विश्व चिंतन सीरीज

सार्त्र शब्दों का मसीहा — प्रस्तुति—प्रभा खेतान

प्लेटो संवाद — प्रस्तुति—बद्रीनाथ कौल

नीत्शे जरथुष्ट्र ने कहा — प्रस्तुति—मुद्राराक्षस

मैकियावेली शासक — प्रस्तुति—शशिप्रभ

शेख सादी गुलिस्तां — प्रस्तुति—रामकिशोर सक्सेना

सम्पादन डा० नीलिमा सिंह
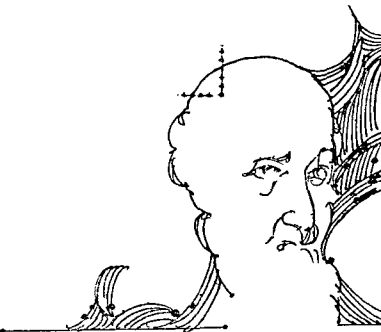
सरस्वती विहार

प्लेटो
संवाद
प्रस्तुति
बद्रीनाथ कौल

प्लेटो : संवाद
(चिंतन)

संपादन :
डॉ० नीलिमा सिंह

प्रथम संस्करण : १९८६
द्वितीय संस्करण १९८७
प्रकाशक
सरस्वती विहार
जी० टी० रोड, शाहदरा
दिल्ली-११००३२

मुद्रक
सोनी आफसेट प्रिंटर्स
शाहदरा, दिल्ली -110 032

SAMVAD
PLATO

मूल्य : पैंतीस रुपये
First Edition 1986
Price : 35-00

इस मानव जन्म मे हम ज्ञान के निकटतम तभी होते हैं, जब हमारा अपने शरीर के साथ न्यूनतम सवाद अथवा समागम हो और हम शारीरिक प्रवृत्तियो की अतिशयता से बचकर तब तक स्वय को शुद्ध रखे रहें, जब तक कि परमात्मा स्वय स्वेच्छा से हमे मुक्त न कर दे। इस प्रकार शरीर की जडता से मुक्त होकर हम पवित्र हो जाएगे और हमारा समागम पवित्र के साथ ही होगा।

संवाद

अनुक्रम

प्लेटो और संवाद

प्लेटो का चिन्तन उसके सासारिक अनुभवो का निचोड है। उसमे व्यावहारिकता है और यथार्थ का साक्षात्कार भी। कोरे सिद्धान्त-निरूपण अथवा स्वप्नदर्शी आशावाद से हटकर उसने बडी गहराई के साथ जीवन के विविध पहलुओ का विश्लेषण किया है।

उसका जन्म ४२७ ई० पू० मे अथेन्स में एक सम्भ्रान्त कुल मे हुआ था। पूर्वजो की परम्परा का निर्वाह करते हुए वह राजनीति के क्षेत्र में उतर आया। ३९९ ई० पू० मे सुकरात को मृत्यु-दड दिया गया तो उसने क्षुब्ध होकर राजनीति से सन्यास ले लिया।

जीवन के अगले बारह वर्ष उसने देश-देशान्तर का भ्रमण करने मे बिताए। इसके बाद वह लौटकर आया तो अकादमी मे दर्शन पढ़ाने लगा। प्लेटो ने इस अकादमी की नीव ३८७ ई० पू० मे डाली थी। यह पश्चिम का पहला विश्वविद्यालय था जो ५२९ ई० तक अस्तित्व मे रहा। विज्ञान और दर्शन की शिक्षा देने वाला इसका पाठ्य क्रम प्लेटो के उन सिद्धान्तो को साकार करता है जिनके अनुसार राज्य का परित्राण उसके भावी कर्णधारो के उचित प्रशिक्षण द्वारा ही सभव है।

प्लेटो ने अपने चिन्तन के सस्कार सुकरात से पाए थे जिसके फक्कड व्यक्तित्व और रूढि विरोधी उद्गारो को उस युग का परम्परावादी समाज सहन न कर पाया। सुकरात के समकालीन अरिस्तोफनेस ने अपने नाटक मे उसके विचारो की खिल्ली उडाने मे कोई कसर नहीं छोडी। राज्य के पास उसके विद्रोही स्वर को खामोश कर देने का एक ही उपाय बच सका— मृत्यु-दड।

प्लेटो ने सुकरात को व्यक्ति के पवित्र आचरण की कसौटी माना है। उसकी उपलब्ध कृतियो मे तीस सवाद और कुछ पत्र हैं जिनका मुख्य पात्र

सुकरात है। राजनीति की समस्याओं से उसका सरोकार अन्त तक रहा जिसका प्रमाण उसकी पुस्तक 'रिपब्लिक' में तथा वृद्धावस्था में लिखे गए अधूरे संवाद 'द लॉज' में मिलता है।

इस पुस्तक में प्लेटो के तीन सर्वाधिक प्रसिद्ध संवाद संकलित किए गए हैं—प्रतिवाद, क्राइटो और फ़ीडो। यह संवाद-त्रयी सुकरात के मुकदमे, उसके बन्दी-जीवन तथा विष-पान के प्रसंगों पर आधारित है। ये संवाद सुकरात की दार्शनिक मान्यताओं का समर्थन बड़ी सशक्त और नाटकीय विधि से करते हैं।

संवाद में प्लेटो ने प्रश्नोत्तर की तार्किक शैली अपनाई है। यही सुकरात की भी प्रिय विवेचना-पद्धति थी। इसमें प्लेटो का उद्देश्य मनुष्य की तर्कशक्ति, उसके विवेक और उसकी जिज्ञासा को तीव्र करना रहा है। वह नैतिकता को वैज्ञानिकता से अधिक महत्त्व देता है, क्योंकि उसकी दृष्टि में जो शुभ है वही सत्य है।

प्लेटो के इन संवादों में साहित्य की मनोहरता और दर्शन की गरिमा का अद्भुत सामंजस्य मिलता है। यही कारण है कि ढाई हजार वर्ष बाद भी लोग इन्हें तन्मय होकर पढ़ते हैं। इनमें कुछ है जो सनातन है। आज भी उससे प्रेरणा ली जा सकती है।

प्रतिवाद

३९९ ई० पू० मे सत्तर वर्षीय सुकरात पर अथेन्स मे मुकदमा चलाया गया। वादी तीन व्यक्ति थे—राजनीतिज्ञ अन्यूतस, कवि मलेतस तथा भाषणकर्ता लाइकोन। उस पर अभियोग लगाया गया कि वह नास्तिक है, वह राज्य के देवताओं मे निष्ठा नही रखता, वह कुतर्क को सुतर्क करके दिखाता है और उनके द्वारा नवयुवको को भ्रष्ट कर रहा है। सारे विवरणो का परीक्षण करने के पश्चात् न्यायालय ने उसे अपराधी पाया और उसे मृत्यु-दड दे दिया गया।

इस मुकदमे मे सुकरात ने अपनी सफाई देते हुए न्यायालय मे कुल तीन भाषण दिए। श्रोताओं मे प्लेटो स्वय उपस्थित था अतः इस 'प्रतिवाद' का ऐतिहासिक महत्त्व भी है।

इन तीनों भाषणो से ऐसा लगता है कि सुकरात अपनी सफाई प्रस्तुत करने मे उतना तत्पर नहीं था जितना कि अपना मन्तव्य समझाने मे। वह दो-एक तर्कों से ही यह सिद्ध कर देता है कि उस पर लगाए गए सभी आरोप मिथ्या हैं और फिर यह समझाने का प्रयत्न करता है कि एक दार्शनिक होने के नाते यह उसका परम कर्तव्य है कि वह स्वय अपने तथा दूसरो के जीवन का विश्लेषण करे, उसे स्वय समझे और दूसरो को समझाए।

वह कहता है कि उसके वास्तविक शत्रु वे नही हैं जो उस पर मुकदमा चला रहे हैं। ऐसे सभी लोग उसके शत्रु हैं जो तर्क और सदाचार के विरोधी हैं और जो उसके इस सिद्धान्त से भड़क उठते हैं कि 'अपरीक्षित जीवन जीने के योग्य नहीं होता।'

सुकरात को अपराधी ठहराने के बाद उसे यह सुविधा दी जाती है कि वह स्वयं ही अपने लिए उचित दड का प्रस्ताव रखे। सुकरात कहता

है कि वह ऐसे अपराध के लिए क्षमा नहीं मांग सकता है जो उसने कभी किया ही नहीं, न वह जुर्माने के रूप में धन दे सकता है और न ही अपना रास्ता बदल सकता है।

वस्तुतः उसने स्वयं ही निर्णायकों को मृत्यु-दंड देने के लिए बाध्य कर दिया, अन्यथा वे उसे शहीद न होने देते। उनका इरादा यही था कि उसे मृत्यु-भय द्वारा आतंकित करके खामोश कर दिया जाए।

पात्र सुकरात, मलेतस तथा अन्य श्रोतागण
दृश्य अथेन्स का न्यायालय

हे अथेन्सवासियो! मैं कह नहीं सकता कि मेरे अभियोक्ताओं द्वारा आप कितने प्रभावित हुए हैं, परन्तु इतना अवश्य जानता हूं कि इन्होंने ऐसे सशक्त शब्दों में अपनी बात कही कि मैं स्वयं अपने-आप को लगभग भूल ही गया। परन्तु यह सब होते हुए भी इन्होंने शायद ही कोई सच बात कही हो! इनमें से एक ने तो मुझे बिल्कुल ही आश्चर्यचकित कर दिया। मेरा संकेत इनके इस वक्तव्य की ओर है कि आप सबको सावधान रहना चाहिए। आपको मेरी वाक्प्रवीणता के जाल में नहीं फंसना चाहिए। इनका ऐसा कहना मुझे सचमुच बहुत ही लज्जा की बात लगी, क्योंकि मैं बोलने के लिए मुंह खोलता और स्वयं को वाक्प्रवीण सिद्ध न कर सकता तो निश्चय ही इनकी पोल खुल जाती। हां, यदि वाक्शक्ति से इनका आशय सत्य बल से है तो मैं मानता हूं कि मैं वाक्प्रवीण हूं—परन्तु बिलकुल भिन्न ढंग से। हां, तो जैसा कि मैं कह रहा था इन्होंने शायद ही कोई सच बात कही हो, परन्तु मुझसे आप सारी बातें सच-सच सुनेंगे। मैं इन लोगों की भांति, अर्थात् शब्दों और मुहावरों से युक्त एक नियोजित भाषण द्वारा, अपने-आप को व्यक्त नहीं करूंगा, ईश्वर साक्षी है, मैं ऐसा नहीं करूंगा। मैं उन शब्दों और तर्कों का प्रयोग करूंगा जो बोलते समय मुझे सूझते जाएंगे, क्योंकि मुझे अपने न्याय्य पक्ष पर पूरा पूरा विश्वास है। अथेन्सवासियो, इस अवस्था में मुझे आपके सामने एक तरुण वक्ता की भांति प्रकट होना शोभा नहीं देगा, न आपको मुझसे वैसी आशा ही रखनी चाहिए। इसके अतिरिक्त मेरी एक प्रार्थना है, और मैं आपकी कृपादृष्टि का याचक हूं—यदि मैं अपने अभ्यास के अनुसार अपनी सफाई प्रस्तुत करूं, और आप मुझे वैसे ही शब्दों का प्रयोग करते सुनें जैसे कि मैं बाजारों, रुपया-पैसा लेन-देन करने वालों की दुकानों अथवा और किसी स्थान पर करता आया हूं, तो कृपया आप विस्मित न हों और न इस कारण मुझे बोलते-बोलते रोक ही क्योंकि अब मेरी आयु

सत्तर से अधिक है और किसी न्यायालय मे उपस्थित होने का यह मेरा पहला अवसर है। यहा की भाषा-शैली से मैं बिलकुल अपरिचित हू, इसलिए आपसे प्रार्थना करता हू कि आप मुझे सचमुच ही एक परदेशी मानिए, जिसको अपनी बोली मे तथा अपने देश की रीति के अनुसार बोलने पर आप क्षमा करेंगे। कही मेरी यह प्रार्थना अनुचित तो नहीं? खैर, आप मेरे बोलने के ढग की ओर ध्यान न दीजिए। वह अच्छा हो सकता है, नही भी हो सकता है। केवल मेरे शब्दो की सच्चाई पर ध्यान दीजिए और उस पर विचार कीजिए। यहा बोलने वाला हर व्यक्ति सच बोले और निर्णायक सच्चा न्याय करें।

सबसे पहले मुझे अपने ऊपर लगाए गए पुराने आरोपो का अपने प्रथम अभियोक्ताओ को उत्तर देना है, उसके बाद बादवाले आरोपो का, क्योकि बहुत पहले से मेरे अनेको अभियोक्ता होते आये हैं, जो आपके सामने पिछले कई वर्षों से मुझ पर झूठे आरोप लगाते आए हैं। मुझे उन लोगो से जितना भय लगता है, उतना अन्यूतस और उसके साथियो से नही। ये भी, अपने ढग के, बडे ही विकट हैं परन्तु इनसे कही अधिक विकट वे पहले वाले ही है, जिन्होने आपके बचपन मे ही मेरी बुराई करनी आरम्भ कर दी थी कि सुकरात नाम का एक बुद्धिमान व्यक्ति ऊपर आकाश" की परिकल्पना करता है, नीचे धरती" के भीतर की छान-बीन करता है और कुतर्क को सुतर्क बनाकर दिखाता है। इस प्रकार उन्होने आपके हृदय तथा मस्तिष्क मे अपनी झूठी बातो के लिए स्थान बना लिया। इस प्रकार की झूठी बातें फैलाने वाले ये वही अभियोक्ता हैं, जिनसे कि मैं डरता हू, क्योकि उनकी बातें सुनने वालो को सहज ही यह भ्रम होता है कि इस प्रकार की छानबीन करने वाले देवताओ की सत्ता मे विश्वास नही करते। ऐसे अभियोक्ता असख्य हैं। मेरे विरुद्ध उनके द्वारा लगाये गए आरोप बहुत ही पुराने हैं। ये आरोप उन दिनो लगाये गए थे, जब आप लोग आज की अपेक्षा कही अधिक प्रभावित हो सकते थे, अर्थात् आपके बचपन के दिनो मे या शायद जब आप लोग तरुण थे। भूल से इन आरोपो को सत्य मान लिया गया, क्योकि इनका खण्डन करने वाला कोई था ही नही। सबसे मुश्किल बात तो यह है कि मैं अपने अभियोक्ताओं को, सयोगवश केवल एक हास्य कवि[1] को छोडकर, न जानता हू और न ही उनके नाम ही बता सकता हू। जिन्होने द्वेष तथा कुटिलता के कारण आप लोगो को विश्वास दिलाया, इनमे कुछ व्यक्ति तो पूर्वाग्रह से ग्रस्त हैं। इस समस्त जनसमुदाय के साथ निपटना बहुत ही

कठिन है क्योंकि मैं उनको यहां पेश करवाकर उनके साथ जिरह नहीं कर सकता। इस प्रकार अपनी सफाई प्रस्तुत करने के लिए मुझे छाया-चित्रों से लड़ना है और गैरजिम्मेदार लोगों से तर्क-वितर्क करना है। अब मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप, मेरे साथ यह मानकर चलें कि मेरे विरोधी दो प्रकार के हैं—एक तो आजकल के नये-नये और दूसरे पुराने। मुझे आशा है कि मेरे द्वारा पुरानों को पहले उत्तर दिए जाने को आप उचित मानेंगे क्योंकि उनके द्वारा लगाए गए आरोपों को आपने बहुत पहले तथा अनेक बार सुना है।

हां, तो मुझे अब अपनी सफाई प्रस्तुत करनी चाहिए और थोड़े ही समय में बहुत पहले से लगे हुए कलंक को मिटाने का प्रयत्न भी करना चाहिए। यदि इस प्रयत्न में मेरी सफलता मेरे तथा आप लोगों के लिए हितकारी हो और किसी भी प्रकार से इस मामले में मेरे लिए लाभदायक सिद्ध हो तो ईश्वर करे कि मुझे सफलता प्राप्त हो। यह कोई आसान काम नहीं और मैं इसकी गहनता को खूब समझता हूं इसलिए परिणाम को ईश्वर के भरोसे छोड़कर और कानून के आगे सिर झुकाकर, मैं अपना प्रतिवाद आरम्भ करता हूं।

मैं आरम्भ से ही विषय को लेता हूं और पूछना चाहता हूं कि वह कौन-सा आरोप है, जिसने मुझे कलंकित किया है और जिसने वास्तव में मलेतस को मेरे विरुद्ध यह लांछन लगाने के लिए उत्साहित किया है? हां, तो मुझे कलंकित करने वाले क्या कहते हैं? उनको ही वादी मान-कर मैं उनके अभियोग को सार रूप में प्रस्तुत करता हूं : 'सुकरात एक पातकी है, वह एक अनोखा व्यक्ति है, जो आकाश तथा पाताल के पदार्थों की छान-बीन करता है, कुतर्क को सुतर्क दिखाता है और दूसरों को उपर्युक्त मतों की शिक्षा देता है।' कुछ ऐसे ही लांछन हैं बिलकुल वही जिनकी झांकी आपने स्वयं अरिस्तोफनेस' के एक प्रहसन में देखी होगी। उसमें उसने सुकरात नामक एक पात्र को प्रस्तुत किया है, जो कहता फिरता है कि मैं वायु पर चलता हूं। इसके अतिरिक्त वह दूसरे ऐसे विषयों के सम्बन्ध में बहुत-सी बेहूदा बातें करता है, जिनके बारे में थोड़ा-बहुत जानने का भी मैं दम्भ नहीं करता। इससे आप यह न समझें कि मेरा मन्तव्य प्रकृति विज्ञान का अध्ययन करने वाले किसी व्यक्ति की खिल्ली उड़ाना है। मुझे खेद है कि मलेतस मुझपर इस प्रकार का गम्भीर आरोप लगा सका। खैर, ओ अथेन्सवासियो, सीधी-सच्ची बात तो यह है कि भौतिक तत्त्वों के बारे में इस तरह के अनुमान लगाने से मेरा कोई

सम्बन्ध नहीं है। यहां उपस्थित लोगों में बहुत-से मेरे वक्तव्य की सचाई के साक्षी हैं और मैं प्रार्थना करता हूं कि आप लोगों में से जिन्होंने मेरी बातें सुनी हैं, वे कृपया बोलें और अपने पास वालों से कहें कि क्या आप में से किसी ने कभी भी मुझे संक्षिप्त अथवा विस्तृत रूप से ऐसे विषयों की चर्चा करते सुना है? आप इन लोगों का उत्तर सुन लीजिए और अभियोग के इस अंश के बारे में ये लोग जो कुछ कहते हैं, उससे आप मुझ पर लगाए गए अन्य आरोपों की सत्यता का अनुमान स्वयं लगा सकते हैं।

इतनी ही निराधार यह अपवाह भी है कि मैं शिक्षक हूं और शुल्क बटोरता हूं। यह भी पहले वाले आरोप की भांति मिथ्या ही है। हालांकि मेरे विचारानुसार—यदि कोई व्यक्ति सचमुच मानव को शिक्षा देने के योग्य हो तो उस शिक्षा के बदले शुल्क लेना उसके लिए गौरव की ही बात होगी। लियोनतिअम निवासी गोरगिअस, सिओस निवासी प्रोदिकस और अलिस निवासी हिप्पिआस को देखिए। ये सब शहरों में घूमते फिरते हैं और नवयुवकों को इस सीमा तक प्रभावित कर लेते हैं कि वे अपने नगर के निःशुल्क पढ़ाने वाले अध्यापकों को छोड़कर इनके पीछे हो लेते हैं और शिक्षा पाने के लिए न केवल शुल्क ही देते हैं बल्कि शुल्क देने का अवसर पाकर अपने-आप को अनुगृहीत भी मानते हैं। इन दिनों अथेन्स में पेरिया का एक दार्शनिक ठहरा हुआ है, जिसकी चर्चा मेरे कानों तक पहुंची है। हुआ यह कि मुझे हिप्पोनिकस का पुत्र कालियास मिला। उसने कूट तार्किकों पर पानी की तरह धन लुटाया है। यह जानते हुए कि वह पुत्रवान् है, मैंने उससे पूछा, "कालियास, यदि तुम्हारे दो पुत्र बछेड़े या बछड़े होते तो उनकी देख-रेख के लिए किसी आदमी को ढूंढ़ निकालना कठिन न होता। हम किसी घोड़ा साधने वाले को या फिर किसी [illegible]

[illegible] सोचा है 'क्या तुम्हारी दृष्टि में ऐसा कोई व्यक्ति है, जो मानवीय तथा राजनैतिक सद्गुणों को अच्छी प्रकार समझता हो? तुमने तो इस विषय पर सोचा ही होगा, क्योंकि तुम पुत्रवान् जो हो। तो क्या कोई ऐसा है?" 'हां, है तो।" उसने कहा। "कौन है वह?" मैंने पूछा, "वह कहां का निवासी है और वह क्या लेता है?" "वह व्यक्ति पेरिया का इवेनस है," उसने उत्तर दिया, "और वह प्रति शिष्य पांच मीण' लेता है।" धन्य है इवेनस, मैंने मन-ही-मन सोचा, यदि सचमुच उसके पास

ऐसा ज्ञान हो और वह इतने सामान्य शुल्क पर शिक्षा प्रदान करता हो। यदि मेरे पास भी ऐसा ही ज्ञान होता तो मैं बहुत ही अहंकारी और अभिमानी होता, परन्तु सच्ची बात तो यह है कि मेरे पास इस प्रकार का ज्ञान नही है।

हे अथेनियो, मान लो आपमे से कोई पूछे, "हा, सुकरात, यह तो ठीक है, परन्तु तुम्हारे विरुद्ध लगाए गए इन आरोपो का आधार क्या है? अवश्य ही तुम किसी अनोखे कार्य मे लगे रहे होगे। यदि तुम जनसाधारण की तरह होते तो तुम्हारे बारे मे ये सभी अपवाहे कभी भी प्रचलित न होती। हमे यह तो बताओ कि इस सबका क्या कारण है, क्योकि तुम्हारे विषय मे जल्दबाजी से कोई निर्णय करने से हमे खेद होगा।" हा इसे मैं एक उचित चुनौती मानता हू और मैं आपको यह समझाने का पूरा प्रयत्न करूगा कि मुझे बुद्धिमान क्यो कहा जाता है और मैंने इस प्रकार का अपयश कैसे कमाया है। कृपया, जरा ध्यान से सुनिये। आपमे से कुछ सज्जन यह भी सोचेंगे कि मैं मजाक कर रहा हू परन्तु मैं यह कहे देता हू कि मैं आपमे सारी बात सच-सच ही कहूगा। यह यश, अथेस निवासियो, मैंने अपने मे निहित एक विशेष प्रकार के प्रज्ञान विवेक के कारण ही कमाया है। यदि आप पूछें कि किस प्रकार का प्रज्ञान, तो मेरा उत्तर होगा ऐसा विवेक, जिसको शायद हर मनुष्य प्राप्त कर सकता है। केवल इसी सीमा तक मैं अपने आप को प्रज्ञानी मानने के लिए तैयार हू। दूसरी ओर जिन लोगो के बारे मे मैं अभी कह रहा था, उनका ज्ञान तो अतिमानवीय है। ऐसा ज्ञान मेरे पास न होने के कारण उसका वर्णन करना मेरे बस का नही। मुझ पर इस प्रकार का ज्ञानी होने का आरोप लगाने वाला कोई भी व्यक्ति सरासर झूठ बोलता है और मेरा चरित्र हनन करता है। और अब, हे अथेन्सवासियो, मैं आपसे प्रार्थना करता हूकि आप मुझे टोकिएगा नही, भले ही मैं कोई फालतू बात करते दिखाई दू, क्योकि जो कुछ मैं कहने वाला हू, वह मेरा अपना वक्तव्य नही है। मैं आपको एक प्रतिष्ठित साक्षी का हवाला दूगा। वह साक्षी दल्फी का आराध्य देव है, वही आपको मेरे प्रज्ञान, यदि मुझमे ऐसा कुछ हो तो, और उसकी प्रकृति के बारे म बतलाएगा। आप केइरिफोन को जानते ही होगे बहुत पहले से वह मेरा मित्र था और आपका भी। उसने भी पिछले दिनो औरो के साथ देश निकाला" भोगा और आपके साथ-साथ ही वह लौटकर भी आया। हा, तो यह केइरिफोन, आप जानते ही हैं, प्रत्येक कार्य मे बडा ही सवेगवान था। वह देल्फी चला गया और उसने साहस-

पूर्वक देववाणी से प्रश्न किया—जैसा कि मैंने आपसे विनय किया है, आप कृपया मुझे टोकें नहीं—उसने देववाणी से पूछा कि क्या सुकरात से बढ़कर बुद्धिमान कोई दूसरा व्यक्ति है। पाइथिया की भविष्यवक्ता ने उत्तर दिया कि नहीं, सुकरात से अधिक बुद्धिमान दूसरा कोई भी नहीं है। केरिफोन तो अब मर चुका है, परन्तु उसका भाई जो इस समय न्यायालय में उपस्थित है, मेरे वक्तव्य की सत्यता का समर्थन करेगा।

मैं इस बात की चर्चा क्यों कर रहा हूं ? केवल इसलिए कि मैं आपको बता दूं कि मेरी ऐसी कुख्याति क्यों फैली हुई है। जब देववाणी का उत्तर मेरे कानों तक पहुंचा तो मैंने अपने-आप से पूछा कि पूज्य देवता का आशय क्या हो सकता है ? और उनकी कूटवाणी की व्याख्या क्योंकर की जाए ? मैं जानता था कि थोड़ा अथवा बहुत, मेरे पास तो ज्ञान है ही नहीं। तो फिर उसको मुझे बुद्धिमानों में श्रेष्ठतम कहने का क्या अभिप्राय हो सकता है ? और वे देवता जो ठहरे, झूठ बोल नहीं सकते, क्योंकि ऐसा करना उनकी प्रकृति के विरुद्ध है। बहुत सोच विचार करने के बाद मैंने इस उलझन को सुलझाने का एक उपाय खोज निकाला। मैंने विचार किया कि यदि मुझे कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाए, जो मुझसे अधिक बुद्धिमान हो तो इस निराकरण को अपने साथ लेकर देवता के पास पहुंच जाऊं और उनसे कहूं, 'लीजिए, यह व्यक्ति मुझसे अधिक बुद्धिमान्-विवेकशील है।" इसी इरादे से मैं एक ऐसे व्यक्ति के पास गया, जिसने अपनी बुद्धिमत्ता के कारण नाम कमाया था, और उससे बातचीत करने लगा—उसका नाम बताने की मुझे आवश्यकता नहीं है। जिसे मैंने परीक्षण के लिए चुना, वह एक राजनीतिज्ञ था। उस परीक्षण का परिणाम इस प्रकार रहा जब मैंने उसके साथ बातचीत आरम्भ की तो उसको वास्तविक रूप में बुद्धिमान न मानने के सिवा मुझे और कोई चारा ही न दिखाई दिया, यद्यपि बहुत-से लोग उसे बड़ा ही बुद्धिमान व्यक्ति मानते थे और वह स्वयं अपने आप को और भी अधिक बुद्धिमान समझता था। इस पर मैंने उसको यह समझाने का प्रयत्न किया कि यद्यपि वह अपने आप को महाज्ञानी समझता है, परन्तु वास्तव में ऐसी बात है नहीं। परिणामस्वरूप वह मुझसे घृणा करने लगा और वहां पर उपस्थित वे सभी व्यक्ति जिन्होंने मुझे यह बात कहते हुए सुना, मेरे प्रति उसकी शत्रुता के साझेदार बन गए। इसलिए मैं उसको छोड़कर चल दिया, और जाते-जाते मैंने अपने मन में कहा ठीक है, यद्यपि मेरे विचारानुसार हम दोनों में से किसी को भी वास्तविक शिवं अथवा सुन्दर के विषय में कोई ज्ञान नहीं, फिर भी मैं

उससे अच्छा ही हूं, क्योंकि वह अज्ञानी होते हुए भी अपने-आप को ज्ञानवान् समझता है, इसके विपरीत मैं न तो कुछ जानता हूं, और न ही अपने-आप को ज्ञानी समझता हू। इस दूसरे तथ्य के आधार पर मुझे ऐसा लगा कि मैं उससे कुछ अच्छा ही हू। इसके बाद मैं एक ऐसे व्यक्ति के पास गया जो स्वय को और भी अधिक बुद्धिमान समझता था। यहा भी परिणाम ठीक पहले जैसा निकला। इस प्रकार मैं उसको भी अपना शत्रु बना बैठा। इसी तरह मेरे अनेक शत्रु बनते चले गए।

फिर भी मैं एक के बाद दूसरे के पास जाता रहा। ऐसा करके मैं अपने प्रति जिस वैमनस्य को उभार रहा था उससे मैं बेखबर नही था, मुझे इस स्थिति से दुख होता था और भय भी लगता था, परन्तु अनिवार्य आवश्यकता मेरे सिर पर थी। मैंने सोचा कि मुझे अन्य बातो की अपेक्षा देववाणी को ही प्राथमिकता देनी चाहिए। मुझे उन सब लोगों के पास जाना होगा, जो बुद्धिमान जैसे प्रतीत होते है और देववाणी के अभिप्राय को समझना होगा। हे अथेनियो ! मैं सौगन्ध खाता हू क्योंकि मुझे आपसे सत्य ही कहना है। मेरे प्रयत्नो का परिणाम यह निकला मैंने यह पाया कि जो सबसे अधिक ख्यातिप्राप्त थे वे अत्यन्त मूर्ख निकले और अन्य लोग जो उतने प्रसिद्ध नही थे, वही वास्तव मे अधिक ज्ञानी और श्रेष्ठ थे।
[illegible] प्रयत्नो की
[illegible] देववाणी
[illegible] पास गया
जिनमे त्रासदी, मद्य देव के भक्तिगीत लिखने वाले कई अन्य प्रकार के कवि शामिल थे। उनका कहना था कि उनके सामने मेरी कलई तुरन्त खुल जाएगी और मैं स्वय को उनकी अपेक्षा अज्ञानी पाऊगा। अत मैं उनकी ही रचनाओ मे से कुछ अत्यन्त जटिल अश ले गया और उन अशो की व्याख्या करने की प्रार्थना की। सोचा तो यही था कि वह मुझे कुछ न-कुछ सिखा ही देंगे परन्तु आप मेरा विश्वास करेंगे क्या ? सत्य कहने मे मुझे कुछ-कुछ सकोच का अनुभव हो रहा है, परन्तु मुझे यह कहना ही पड रहा है कि वहा शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति होगा, जो उनकी कविता की व्याख्या उनसे कही अधिक भली प्रकार न कर पाए। तब मुझे ज्ञात हुआ कि कवि, अपने काव्य की रचना किसी ज्ञान के बल पर नहीं, बल्कि एक प्रकार की प्रतिभा और प्रेरणा के वशीभूत होकर ही करते है। ये उन दिव्य-दर्शी तथा भविष्यवक्ताओ जैसे ही हैं, जो बहुत-सी गूढ बातें कहते हैं, परन्तु स्वय उनका अर्थ नही जानते। कवि

भी मुझे कुछ इसी प्रकार के सांचे मे ढले हुए मालूम हुए। इसके अतिरिक्त मैंने यह भी देखा कि अपनी कविता के बलबूते पर वे अपने-आप को उन दूसरे क्षेत्रों मे भी सिद्धहस्त समझते हैं, जिनकी कि उनको कोई जानकारी नही होती। यह देख जिस हेतु मैंने स्वय को राजनीतिज्ञों से श्रेष्ठतर माना था, उसी हेतु अपने को कवियो से भी श्रेष्ठतर मान लिया और मैं उन्हे छोडकर चल दिया।

अन्त म मैं कारीगरो के पास गया। मुझे यह तो मालूम ही था कि मैं कुछ भी नहीं जानता हू—और मुझे इस बात का भी निश्चय था कि ये कारीगर लोग बहुत-सी अच्छी वस्तुए बनाना जानते हैं। मेरा यह विश्वास भ्रामक नही निकला, क्योकि वे सचमुच बहुत-सी ऐसी बातें जानते थ जिनका मुझे कोई ज्ञान नही, इस दृष्टि से वे अवश्य मुझसे अधिक ज्ञानी निकले। परन्तु मैंने देखा कि अच्छे से अच्छे कारीगर भी कवियो की उसी भूल के शिकार है, अर्थात्, अच्छे कारीगर होने के कारण उन्ह भ्रम होता है कि वे हर प्रकार की ऊची बातो को भी जानते हैं और उनका यह दोष उनके सारे ज्ञान पर छा जाता है। इसलिए मैंने देववाणी की ओर से अपने आप से पूछा कि क्या मुझे उनके ज्ञान और अज्ञान दोनो से दूर रहकर वैसे का वैसा ही रहना चाहिए या कि दोनो बातो मे उन जैसा हो? उत्तर मे मैंने स्वय को तथा देववाणी को बता दिया कि मैं जैसा हू, वैसा ही ठीक हू।

इस पूछ-ताछ के परिणामस्वरूप अनेक व्यक्ति मेरे निकृष्टतम तथा विकटतम शत्रु बन गये और इसी कारण मुझपर अनेक कलक लगन के अवसर उपस्थित हुए। मैं प्रज्ञानी कहलाता हू, क्योकि मेरी बातो को सुनने वाले सदैव यही कल्पना करते है कि वह ज्ञान, जिसका मैं दूसरो मे अभाव पाता हू, मुझमे ही निहित है, परन्तु हे अथेन्सवासियो, वास्तविकता तो यह है कि केवल ईश्वर ही ज्ञानी है। वे अपने उत्तर से स्पष्ट करना चाहते हैं कि मानव का ज्ञान नगण्य अथवा नगण्य जैसा ही है। देववाणी का तात्पर्य मुझ सुकरात से नहीं है। वे मेरा नाम केवल उदाहरणार्थ लेते हैं। मानो कहते हो हे मानव, श्रेष्ठतम ज्ञानी वही है जो सुकरात की भाति यह जानता हो कि उसका ज्ञान किसी योग्य नही। मैं देव-प्रेरणा से सारे ससार म घूमता फिरता हू और जो भी मुझे ज्ञानी दिखाई देता है, चाहे वह देशी हो या विदेशी, मैं उसके ज्ञान का परीक्षण करता हू। यदि वह ज्ञानी सिद्ध न हो तो मैं देववाणी के समर्थनार्थ उसको समझाता हू कि वह ज्ञानी नहीं है। मेरा यह धधा मुझे अत्यन्त

निजी कार्य की ओर ध्यान देने का समय ही नहीं है। ईश्वर के प्रति ऐसा भक्तिभाव रखने के कारण ही मैं दरिद्र दशा में हू।

एक और बात है—धनिक वर्ग के नवयुवक, जिनके पास अधिक काम नही होता, स्वेच्छा से ही मुझे आ घेरते हैं। वे शेखीबाजों का परीक्षण होते देखना पसन्द नही करते हैं और बहुधा मेरी नकल करते हुए दूसरो का परीक्षण करने निकल पडते हैं। उन्हे तुरन्त ज्ञात होता है कि ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जो स्वय को ज्ञानी मानते हैं, परन्तु वास्तव मे उन्हे बहुत थोड़ा या शून्य समान ज्ञान होता है। जिनका वे परीक्षण करते हैं, वे स्वय अपने पर क्रोध करने के स्थान पर मुझसे अप्रसन्न होते हैं और चिल्लाते है—यह उद्दड सुकरात, यह धूर्त, नवयुवको को बहकाने वाला! यदि कोई उनसे पूछ बैठे कि वह कौन सी बुराई करता या सिखाता है? तो वे कुछ नही कह पाते। कही उनकी मूढता का भेद न खुल जाए इसलिए वे उन घिसे-पिटे पूर्वरचित मिथ्यारोपो को दोहराते हैं जो कि सभी दार्शनिको के विरुद्ध किये जाते रहे हैं—कि यह ऊपर आकाश और नीचे पाताल की बातें सिखाता फिरता है यह नास्तिक है और अनुपयुक्त कारणो को उपयुक्त बनाकर दिखाता है। ऐसे व्यक्ति इस वास्तविकता को स्वीकार करना नही चाहते कि ज्ञान-सम्बन्धी उनके दम्भ की कलई खुल चुकी है। ऐसे लोग क्योकि असख्य हैं, महत्त्वाकाक्षी तथा शक्ति सम्पन्न हैं, उन्होने अपना मोर्चा बना रखा है और वे लम्बी जीभो वाले हैं, इस लिए उन्होने आपके कानों को मेरे प्रति लम्बे-चौड़े अपवचनो से भर दिया है। इसी कारण मेरे ये तीनो अभियोक्ता—मलेतस, अन्यूतस तथा लाइ-कोन मेरे पीछे पडे हुए हैं। मलेतस ने कवियो की ओर से मेरे साथ झगडा किया, अ यूतस ने राजनीतिज्ञो तथा कारीगरो की ओर से और लाइकोन ने वक्ताओ की ओर से। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हू, मैं निन्दा के इस अम्बार से एक ही क्षण मे मुक्ति पाने की आशा नहीं करता। हे अथेन्सवासियो यही सत्य है, सम्पूर्ण सत्य। मैंने न कुछ छिपाया है, न कोई बात बिगाड़कर ही कही है, फिर भी मैं जानता हू कि मेरी स्पष्ट-वादिता के कारण इनको मुझसे घृणा होती है। इनकी यह घृणा मेरे शब्दो की सत्यता का प्रमाण नही तो और क्या है? इसी कारण मेरे विरुद्ध कुत्सित विचारों का प्रचार किया गया है, जैसा कि आपको इसका अथवा भविष्य मे होने वाली किसी भी पूछताछ से पता चलेगा।

मैंने प्रथम वर्ग के अपने अभियोक्ताओ के सम्मुख सफाई के रूप मे कहा है अब मैं दूसरे वर्ग को लेता हू। इनका नेता मलेतस है,

जो स्वय को बडा भलामानस तथा सच्चा देशभक्त कहता है । इन सब लोगो के सम्मुख भी मुझे अपनी सफाई प्रस्तुत करनी चाहिए, अत इनका दावा भी पढ लिया जाए । इसमे कुछ इस प्रकार की बातें है ' सुकरात एक कुकर्मी है, जो नवयुवको को बिगाडता है और राज्य के देवताओ मे निष्ठा नही रखता, बल्कि उसके अपने ही कुछ दूसरे देवता" है । यह रहा अभियोग, अब जरा अलग-अलग आरोपो की जाच तो करें · मलेतस कहता है कि मैं कुकर्मी हू और नवयुवको को बिगाडता हू । हे अथेनियो, मैं कहता हू कि बुरे कर्म करने वाला तो मलेतस है जो कि गम्भीर होने का बहाना करते हुए परिहास रच रहा है और जिन बातो मे उसकी कभी लेशमात्र भी रुचि नही रही, उनमे ही बनावटी रुचि और उत्साह दिखा-कर, वह पूरी तत्परता से लोगो पर दावा करता फिरता है । मैं अपने कथन की सार्थकता को आपके सम्मुख प्रमाणित करने का प्रयास करूगा ।

यहा आओ, मलेतस, जरा तुमसे एक प्रश्न पूछू । नवयुवको के सुधार के विषय में तुम बहुत कुछ सोचा करते हो ?

हा, सोचता तो हू ।

तो इन निर्णायको को जरा बता दो कि उनका सुधारक कौन है ? जैसे उन्हे बिगाडने वाले को खोज निकालने के लिए तुमने परिश्रम किया है और निर्णायको के सम्मुख मुझे दोषी ठहराते हो, वैसे ही उनके सुधारक को भी तुम जरूर जानते होगे । हा, तो जरा बोलो और निर्णायको को बताओ कि उनका सुधारक कौन है ? देखो मलेतस, तुम चुप हो—कहने को तुम्हारे पास कुछ भी नही, परन्तु क्या यह शर्म की बात नही है ? और क्या यह मेरे द्वारा कही गई बातो का, कि तुमको इस मामले मे तनिक भी रुचि नही, विशिष्ट प्रमाण नही है ? बोलो तो, बोलो मित्र, उनका सुधारक कौन है ?

कानून ।

परन्तु, मेरे श्रीमान्, मेरा यह आशय नही है । मैं जानना चाहता हू कि वह व्यक्ति कौन है, जिसे कानून का सबसे अच्छा ज्ञान हो ?

ये निर्णायक लोग," सुकरात, जो यहा न्यायालय मे उपस्थित हैं ।

मलेतस, क्या तुम्हारे कहने का अभिप्राय यह है कि ये नवयुवको को सिखाने तथा सुधारने के योग्य हैं ?

निस्सन्देह वे है ।

क्या, इनमे सभी इस योग्य हैं, या केवल कुछ ही, और दूसरे नही ?

इनमे सभी ।

हेरे' देवी की सौगन्ध, यह तो शुभ समाचार है ! तब, तो यहा बहुत-से सुधारक हैं। और श्रोताओं के विषय मे तुम क्या कहते हो, क्या ये भी नवयुवकों को सुधारते हैं ?

हा, वे भी सुधारते हैं।

और सीनेट के सदस्य ?

हा, वे भी उनको सुधारते हैं।

परन्तु शायद विधान सभा के सदस्य उन्हे बिगाडते हैं ? या कि वे भी उनको सुधारते हैं ?

वे भी सुधारते हैं।

तब तो सिवाय मेरे प्रत्येक अथेन्स निवासी उन्हे सुधारता तथा ऊचा उठाता है और केवल मैं ही उन्हे बिगाडने वाला हू। क्या तुम यही कहना चाहते हो ?

यही बात है जिसे मैं दृढतापूर्वक कहता हू।

यदि तुम्हारी बात ठीक है तो मै बहुत ही अभागा हू। परन्तु मान लो मैं तुमसे यह प्रश्न पूछू घोडो के बारे म तुम्हारा क्या विचार है ? क्या कोई एक ही व्यक्ति इन्हे हानि पहुचाता है और शेष पूरा ससार इनका हितैषी है ? क्या इसके एकदम विपरीत बात सच नही ? एक ही व्यक्ति मे उनका हित करने की योग्यता होनी है, कम से कम बहुतो मे तो नही ही होती, और वह है घोडे को सधानेवाला व्यक्ति। वह घोडे का हितैषी है और अन्य लोग जिनको उससे काम लेना होता है वे उसका अहित ही करते हैं। क्यो मलेतस, यह बात घोडो तथा अन्य पशुओं के बारे मे सच है या नही ? यह बात निश्चित रूप से सच है, चाहे तुम और अन्यूतस 'हा' कहो या 'न'। उन नवयुवकों की स्थिति अवश्य ही सन्तोषजनक होनी चाहिए जिन्हे एक ही व्यक्ति बिगाडने मे लगा हुआ हो और शेष ससार उनका सुधार करने वाला हो। परन्तु मलेतस, तुमने काफी हद तक यह प्रमाणित कर दिया है कि नवयुवको के विषय मे तुमने कुछ सोच-विचार ही नही किया। तुम्हारी लापरवाही तो इसी से जाहिर हो जाती है कि तुमने जिन बातो के लिए मुझ पर आरोप लगाया है तुम्हे उन्ही की कोई चिन्ता नही है।

और अब, मलेतस, मैं तुमसे एक और प्रश्न पूछूगा, जेउस' की सौगन्ध, अवश्य पूछूगा बोलो, अच्छा क्या है, बुरे नागरिको के साथ रहना या भले नागरिको के साथ ? मैं कहता हू मित्र, उत्तर तो दो। प्रश्न ऐसा है कि इसका उत्तर सहज ही दिया जा सकता है। क्या अपने पडोसियो

के साथ भले लोग भलाई और बुरे लोग बुराई नहीं करते ?

अवश्य।

और क्या ऐसा भी कोई व्यक्ति होगा जो अपने साथ रहने वालो से लाभ के स्थान पर हानि चाहता हो ? उत्तर तो दो मेरे अच्छे मित्र, कानून तुमसे उत्तर की अपेक्षा करता है। क्या कोई व्यक्ति जानबूझकर चोट खाना चाहता है ?

कभी नही।

तुम मुझ पर नवयुवको को बिगाडने और उन्हे पतित करने का आरोप लगाते हो, तो तुम्हारा आक्षेप क्या है—मैं उन्हे जान बूझकर बिगाडता हू अथवा अनजाने ही।

मैं कहता हू—जान-बूझकर।

परन्तु तुमने अभी स्वीकार किया कि भले लोग अपने निकट रहने वालो के साथ भलाई करते हैं और बुरे लोग उनके साथ बुराई करते हैं। तो क्या यही वह सत्य है जिसका अभिज्ञान तुम्हे अपनी सुतीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा इतनी कम उम्र म हो गया और क्या मैं इस आयु पर पहुचकर भी ऐसे अधकार और अज्ञान का शिकार हू जो मैं यह भी नही जानता कि यदि मेरे निकट रहने वाला व्यक्ति मेरे द्वारा बिगडता है तो उससे मेरा ही अहित होने की आशका है, फिर भी मैं उसे बिगाडता हू और वह भी जान-बूझकर, यह तुम कहते हो, लेकिन तुम्हारी इस बात पर न मैं ही विश्वास कर सकता हू और न कोई दूसरा व्यक्ति। या तो मैं उन्हे बिगाडता ही नही हू और यदि बिगाडता हू तो अनजाने ही। अत इन दोनो स्थितियो मे तुम झूठे साबित होते हो। यदि मुझसे यह अपराध अनजाने मे हुआ है तो कानून की दृष्टि मे ऐसा अपराध दडनीय नही है। ऐसी स्थिति म तुम्हे चाहिए था कि मुझे एकान्त म ले जाकर मुझे चेतावनी देते और झिडक-कर समझा देते, क्योकि यदि मुझे नेक सलाह मिल गई होती तो मैं इस प्रकार अज्ञानवश किए जा रहे कुकर्म को छोड देता—अवश्य छोड देता। परन्तु तुम्हारे पास मुझसे कहने के लिए कुछ भी नहीं था और तुमने मेरा पथ प्रदर्शन करने से मुह मोड लिया। और अब तुमने मुझे इस न्यायालय मे ला खडा किया जो दण्ड देने का स्थान है, शिक्षा देने का नहीं।

हे अथेनियो, आप यह भली भाति समझ रहे होगे, जैसा मैं पहले भी कह रहा था, कि मलेतस को इस मामले की कम या ज्यादा, बिलकुल चिन्ता नहीं है। फिर भी मलेतस, मैं जानना चाहूगा कि मुझे किस आधार पर नवयुवको को भ्रष्ट करने वाला माना गया है ? मेरे विचार म, जैसा

हेरे[1] देवी की सौगन्ध, यह तो शुभ समाचार है ! तब, तो यहा बहुत-से सुधारक हैं। और श्रोताओ के विषय मे तुम क्या कहते हो, क्या ये भी नवयुवको को सुधारते है ?

हा, वे भी सुधारते हैं।

और सीनेट के सदस्य ?

हा, वे भी उनको सुधारते है।

परन्तु शायद विधान सभा के सदस्य उन्हे बिगाडते है ? या कि वे भी उनको सुधारते है ?

वे भी सुधारते हैं।

तब तो सिवाय मेरे प्रत्येक अथेन्स निवासी उन्हे सुधारता तथा ऊचा उठाता है और केवल मैं ही उन्हे बिगाडने वाला हू। क्या तुम यही कहना चाहते हो ?

यही बात है जिसे मैं दृढतापूर्वक कहता हू।

यदि तुम्हारी बात ठीक है तो मै बहुत ही अभागा हू। परन्तु मान लो मैं तुमसे यह प्रश्न पूछू घोडो के बारे म तुम्हारा क्या विचार है ? क्या कोई एक ही व्यक्ति इन्हे हानि पहुचाता है और शेष पूरा ससार इनका हितैषी है ? क्या इसके एकदम विपरीत बात सच नही ? एक ही व्यक्ति मे उनका हित करने की योग्यता होती है, कम से-कम बहुतो में तो नही ही होती, और वह है घोडे को सधानेवाला व्यक्ति। वह घोडे का हितैषी है और अन्य लोग जिनको उससे काम लेना होता है वे उसका अहित ही करते है। क्यो मलेतस, यह बात घोडो तथा अन्य पशुओ के बारे मे सच है या नही ? यह बात निश्चित रूप से सच है, चाहे तुम और अन्यूतस 'हा' कहो या 'न'। उन नवयुवको की स्थिति अवश्य ही सन्तोषजनक होनी चाहिए जिन्हें एक ही व्यक्ति बिगाडने मे लगा हुआ हो और शेष ससार उनका सुधार करने वाला हो। परन्तु मलेतस, तुमने काफी हद तक यह प्रमाणित कर दिया है कि नवयुवको के विषय मे तुमने कुछ सोच-विचार ही नही किया। तुम्हारी लापरवाही तो इसी से जाहिर हो जाती है कि तुमने जिन बातो के लिए मुझ पर आरोप लगाया है तुम्हें उन्ही की कोई चिन्ता नही है।

और अब, मलेतस, मैं तुमसे एक और प्रश्न पूछूगा, जेउस[1] की सौगन्ध, अवश्य पूछूगा बोलो, अच्छा क्या है, बुरे नागरिको के साथ रहना या भले नागरिकों के साथ ? मैं कहता हू मित्र, उत्तर तो दो। प्रश्न ऐसा है कि इसका उत्तर सहज ही दिया जा सकता है। क्या अपने पडोसियो

के साथ भले लोग भलाई और बुरे लोग बुराई नही करते ?

अवश्य ।

और क्या ऐसा भी कोई व्यक्ति होगा जो अपने साथ रहने वालो से लाभ के स्थान पर हानि चाहता हो ? उत्तर तो दो मेरे अच्छे मित्र, कानून तुमसे उत्तर की अपेक्षा करता है। क्या कोई व्यक्ति जानबूझकर चोट खाना चाहता है ?

कभी नही ।

तुम मुझ पर नवयुवको को बिगाडने और उन्हे पतित करने का आरोप लगाते हो, तो तुम्हारा आक्षेप क्या है—मैं उन्हे जान बूझकर बिगाडता हू अथवा अनजाने ही ।

मैं कहता हू—जान-बूझकर ।

परन्तु तुमने अभी स्वीकार किया कि भले लोग अपने निकट रहने वालो के साथ भलाई करते हैं और बुरे लोग उनके साथ बुराई करते हैं। तो क्या यही वह सत्य है जिसका अभिज्ञान तुम्हे अपनी सुतीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा इतनी कम उम्र म हो गया और क्या मैं इस आयु पर पहुचकर भी ऐसे अधकार और अज्ञान का शिकार हू जो मैं यह भी नही जानता कि यदि मेरे निकट रहने वाला व्यक्ति मेरे द्वारा बिगडता है तो उससे मेरा ही अहित होने की आशका है, फिर भी मैं उसे बिगाडता हू और वह भी जान-बूझकर, यह तुम कहते हो, लेकिन तुम्हारी इस बात पर न मैं ही विश्वास कर सकता हू और न कोई दूसरा व्यक्ति। या तो मैं उन्हे बिगाडता ही नहीं हू और यदि बिगाडता हू तो अनजाने ही। अत इन दोनो स्थितियो मे तुम झूठे साबित होते हो। यदि मुझसे यह अपराध अनजाने मे हुआ है तो कानून की दृष्टि मे ऐसा अपराध दडनीय नहीं है। ऐसी स्थिति म तुम्हे चाहिए था कि मुझे एकान्त मे ले जाकर मुझे चेतावनी देते और झिडक-कर समझा देते, क्योंकि यदि मुझे नेक सलाह मिल गई होती तो मैं इस प्रकार अज्ञानवश किए जा रहे कुकर्म को छोड देता—अवश्य छोड देता। परन्तु तुम्हारे पास मुझसे कहने के लिए कुछ भी नहीं था और तुमने मेरा पथ प्रदर्शन करने से मुह मोड लिया। और अब तुमने मुझे इस न्यायालय मे ला खडा किया जो दण्ड देने का स्थान है, शिक्षा देने का नहीं।

हे एथेनियो, आप यह भली भाति समझ रहे होगे, जैसा मैं पहले भी कह रहा था, कि मलेतस को इस मामले की कम या ज्यादा, बिलकुल चिन्ता नहीं है। फिर भी मलेतस, मैं जानना चाहूगा कि मुझे किस आधार पर नवयुवकों को भ्रष्ट करने वाला माना गया है ? मेरे विचार से ...

कि तुम्हारे द्वारा लगाए गए अभियोगों से प्रतीत होता है, तुम्हारा आशय यह है कि मैं उन्हें राज्य द्वारा स्वीकृत देवताओं के स्थान पर अन्य नये देवताओं और दैवी शक्तियों को स्वीकार करने की शिक्षा देता हू। तुम्हारे मतानुसार यही वह शिक्षा है जिससे मैं नवयुवकों को बिगाडता हू ?

हां, मैं दावे के साथ कहता हू।

तो फिर मलेतस, जिनकी हम चर्चा कर रहे हैं तुम्हे उन्ही देवताओं की सौगन्ध, तुम मुझे और न्यायालय को जरा सरल भाषा मे समझा दो कि तुम्हारे कहने का आशय क्या है। मैं अभी तक उसे नही समझ पाया हू। तुम्हारा आरोप यह है कि मैं अन्य लोगों को किन्ही देवताओं को स्वीकार करने की शिक्षा देता हू, अत तुम स्वय ही यह मानते हो कि मैं देवताओं मे विश्वास करता हू और पूरी तरह से नास्तिक नही हू—इस बात को तुम अपने आरोप मे नही शामिल करते—तुम केवल यह कहते हो कि वे वही देवता नही है जिन्हें यह नगर पूज्य मानता है—तो तुम्हारी आपत्ति केवल यह रह जाती है कि वे भिन्न देवता हैं। या तुम्हारे आरोप का आशय यह है कि मै केवल नास्तिक हू और नास्तिकतावाद का शिक्षक हू ?

मेरा तात्पर्य तुम्हारी दूसरी वाली बात से है—अर्थात् तुम पूरी तरह से नास्तिक हो।

क्या अद्भुत वक्तव्य है! मलेतस, तुम ऐसा क्योंकर सोचने लगे ? क्या तुम यह कहना चाहते हो कि मैं अन्य लोगो की भांति सूर्य और चन्द्रमा के देवीस्वरूप" म विश्वास नही करता ?

मैं न्यायाधीशों" को आश्वासन देता हू कि इसका ऐसा कोई विश्वास नहीं है, क्योंकि यह कहा करता है कि सूर्य पत्थर है और चन्द्रमा मिट्टी।

मित्र मलेतस, तुम शायद अनक्सगोरस' पर दोषारोपण कर रहे हो। न्यायाधीशो के विषय मे भी तुम्हारा मत निकृष्ट है, तभी तो तुम इनको इस कोटि के अज्ञानी मानते हो कि इन्हें यह भी ज्ञात नहीं कि ये सब सिद्धान्त क्लजोमेनए निवासी अनक्सगोरस की पुस्तकों मे बहुलता से मिलते हैं। ठीक है, तो तुम यह कहना चाहते हो कि यह ज्ञान नवयुवकों को सुकरात द्वारा मिलता है, जबकि नाट्यशाला" मे इन सिद्धान्तो की प्रदर्शनियां कुछ कम तो नही होती। (प्रवेश-शुल्क अधिक-से-अधिक एक ड्राक्मा' होगा।) युवक पैसे देकर उन प्रदर्शनियों को देख सकते हैं और यदि सुकरात इन असाधारण सिद्धान्तो का जन्मदाता होने का ढोंग रचता है तो वे उसकी हंसी भी उडा सकते हैं। और इस प्रकार, मलेतस, क्या

तुम्हारा सचमुच यही विचार है कि मैं किसी भी देवता मे विश्वास नही करता ?

मैं जेउस की सौगन्ध खाकर कहता हू कि तुम, निश्चय ही किसी भी देवता मे रत्ती भर विश्वास नही करते।

मलेतस, तुम्हारी बातो पर कोई भी विश्वास नही करेगा, और मुझे पूरा भरोसा है कि तुम स्वय भी उन पर विश्वास नहीं करते। अथेन्स-वासियो, मेरे मन म, यह विचार आये बिना नही रहता कि मलेतस अविचार तथा अविवेक के वशीभूत है और यह अभियोग इसने केवल चपलता और जवानी के जोश म आकर लिखा है। कही इसने मुझे परखने क विचार से ही इस पहेली को तो नही रचा है ? शायद इसन अपने मन म सोचा हो—देखू, ज्ञानी सुकरात मरी इस विनोदपूर्ण वक्रोक्ति को समझता है कि नहीं, या मैं उसको और शेष सब लोगो को चक्कर मे डाल सकता हू कि नहीं ? क्योंकि इसके दोषारोपण मे मुझे निश्चय ही अन्तर्विरोध दिखाई देता है मानो यह कह रहा हो कि सुकरात अपराधी है क्योंकि वह देवताओ पर विश्वास नही करता और साथ ही यह भी कि वह उन पर विश्वास करता है। किन्तु यह किसी भरोसेमन्द व्यक्ति की-सी बात तो नही है।

हे अथेन्सवासियो, मेरी कामना है कि आप इसके वक्तव्य मे निहित अन्तर्विरोध का परीक्षण करने म मेरी सहायता करें। मलेतस, तुम उत्तर देते रहना। यहा मैं उपस्थित श्रोतागण को वह निवेदन फिर से याद दिला दू कि मैं अपने स्वभाव के अनुसार ही बोलूगा अत आप कोई गडबड न करें।

मलेतस, क्या आज तक कभी किसी व्यक्ति ने मानवीय वस्तुओ के अस्तित्व को मानते हुए मानव के अस्तित्व से इनकार किया है ? अथेनियो, मैं चाहता हू कि यह इस प्रश्न का उत्तर दे और बार-बार विघ्न डालने का प्रयत्न न करे। क्या कभी किसी व्यक्ति ने घुडसवारी मे विश्वास करते हुए घोडा म विश्वास नही किया ? या बासुरीवादन को मानते हुए बासुरी-वादक को नही माना ? क्योंकि तुम स्वय इसका उत्तर देने स इनकार करते हो, इसलिए मैं ही तुम्हे और इस न्यायालय को इसका उत्तर देता हू—नही, मेरे मित्र, ऐसा कोई व्यक्ति नही जिसने कभी ऐसा सोचा हो। अब कृपा करके दूसरे प्रश्न का उत्तर दो : क्या ऐसा हो सकता है कि कोई व्यक्ति निराकार और दैवी शक्तियो मे तो विश्वास करे, किन्तु प्रेतात्माओं और अर्धदेवो मे नही ?

नहीं, वह ऐसा नहीं कर सकता।

कितना भाग्यवान् हूं मैं, जो न्यायालय की सहायता से मैंने तुमसे यह उत्तर तो दिलवाया! परन्तु तुमने अभियोगपत्र मे यह शपथपूर्वक लिखा है कि मैं दैवी तथा निराकार शक्तियो में विश्वास करता हूं (वे नवीन या प्राचीन कैसी भी हों, इससे कोई अन्तर नही पडता) और यही शिक्षा दूसरों को देता हू। खैर, कुछ भी कह लो, मैं निराकार शक्तियो मे

देव क्या हैं? क्या ये देवता अथवा दैवी सन्तान नही?

निस्सन्देह हैं।

बस, इसी को तो मैं तुम्हारी कौतुकमय पहेली कहता हू। अर्द्धदेव तथा अलौकिक आत्माएं देवता हैं। अब देखो, पहले तो तुम कहते हो कि मैं देवताओ मे विश्वास नही करता और उसके बाद यह कहते हो कि मैं उनमे विश्वास करता हू, क्योंकि मैं अर्द्धदेवो मे विश्वास करता हू। यदि अर्द्धदेव देवताओ के ही जारज पुत्र हैं—अप्सराओ अथवा किन्ही अन्य माताओ से, जिनके कि वे पुत्र बताए जाते हैं—तो ऐसा कौन होगा जो

से, मलेतस, तुम्हारा उद्देश्य केवल मेरी परीक्षा लेना ही रहा होगा। तुमने ये सारी बातें अभियोग-पत्र मे इसलिए लिख दी क्योंकि तुम्हारे पास मुझे दोषी ठहराने के लिए कोई ठोस बात नही थी। परन्तु कोई भी व्यक्ति, जिसमे जरा-सी भी बुद्धि हो, तुम्हारी यह बात नही मानेगा कि जो व्यक्ति दैवी और अतिमानवीय सत्ताओ में विश्वास करता हो वह देवताओं, अर्द्धदेवो तथा वीर पुरुषो के अस्तित्व मे विश्वास नही करता।

मैंने मलेतस के अभियोगो के उत्तर मे बहुत कुछ कहा है। इससे अधिक विस्तार मे अपनी सफाई देना व्यर्थ है। परन्तु मैं अच्छी तरह से जानता हू कि मैंने कितने लोगो से शत्रुता मोल ले ली है। यदि मेरा नाश होगा तो मलेतस द्वारा नही, न अन्यूतस द्वारा ही, बल्कि संसार के ईर्ष्यालुओ और निन्दकों द्वारा होगा। इन्हीके कारण अनेक महापुरुष मारे

गए हैं और अनेक अभी मारे जाएंगे, मैं उनका अन्तिम शिकार नहीं हूं।

कोई पूछेगा : सुकरात, तुम्हें लज्जा नहीं आती कि तुम जीवन का एक ऐसा मार्ग अपना रहे हो जिसमें तुम्हें शायद समय से पहले ही मौत के घाट उतरना पड़े? उस व्यक्ति को मेरा स्पष्ट उत्तर यह होगा : यह तुम्हारा भ्रम है। जिस व्यक्ति में लेशमात्र भी साधुता हो उसे जीवन-मरण के संयोग की गणना नहीं करनी चाहिए। उसे केवल इतना ही ध्यान रखना चाहिए कि उसका कार्य, चाहे वह कैसा भी हो, उचित है या अनुचित, वह एक सज्जन की भूमिका में है या कुकर्मी की। शायद तुम्हारे मतानुसार—ट्राय में मरने वाले शूरमाओं में कोई विशिष्ट गुण न था, विशेषकर थेतिस के पुत्र में, जिसने कि अपयश की तुलना में मौत के खतरे को बिलकुल नगण्य समझा। जब वह हैक्टोर को मारने के लिए बहुत ही आतुर हो रहा था तो उसकी दिव्य माता ने उससे कहा था कि यदि तुम अपने मित्र पेत्रोक्लुस की मृत्यु का बदला लेने के उद्देश्य से हैक्टोर को मारोगे तो तुम स्वयं मर जाओगे। यह बात उसने कुछ ऐसे शब्दों में कही थी, "हैक्टोर के पश्चात् नियति तुम्हारी ही प्रतीक्षा करेगी।" यह चेतावनी पाने के बाद भी उसने खतरे और मौत का तिरस्कार किया। उसे इन बातों का भय नहीं था, भय केवल अपने मित्र की मौत का बदला न लेने पर अपयश भरा जीवन बिताने का था। उसने कहा, 'मैं अभी अपने शत्रु के हाथों मार डाला जाऊं तो कोई बात नहीं किन्तु मुझे यहां पड़े-पड़े संसार के उपहास का पात्र बनना और पृथ्वी का भार बन रहना स्वीकार नहीं है।" क्या अकिलीस ने मृत्यु अथवा खतरे की ओर कोई ध्यान दिया था? मनुष्य किस भी मोर्चे पर हो, चाहे उस स्थान को उसने खुद चुना हो या उसके सेनापति ने उसे वहां नियुक्त किया हो, उसे खतरे के समय वहीं टिके रहना चाहिए। अपयश के अतिरिक्त उसे मृत्यु या और किसी कष्ट के बारे में सोचना ही नहीं चाहिए। हे एथेन्सवासियो, यही सत्य वचन है।

हे एथेनियो, आपको मालूम है कि पोतिदाए, अम्फ़ीपोलिस तथा देलिअम में आप लोगों द्वारा चुने गए सेनापतियों के आदेशानुसार मैं अन्य व्यक्तियों की भांति मौत का सामना करते हुए अपने नियुक्त स्थान पर साहसपूर्वक डटा रहा था। यदि अब, जैसा कि मेरा विचार और अनुमान है, ईश्वर ने मुझे एक दार्शनिक का काम सौंपा है और उसके अनुसार मुझे स्वयं अपना और दूसरों का परीक्षण करने का आदेश मिला है तो मैं अपने कर्तव्य को मृत्यु अथवा किसी अन्य भय के कारण त्याग दूं तो मेरा

आचरण निश्चय ही आपत्तिजनक होगा। ऐसी स्थिति में मुझे देवताओं की सत्ता न मानने के आरोप में न्यायालय यदि स्पष्टीकरण मांगता है तो वह न्यायोचित काम ही करेगा क्योंकि यह मेरा अपराध ही होगा यदि मैं मृत्यु के भय से देववाणी की अवहेलना करूं या ज्ञानी न होते हुए भी ज्ञानी होने का अहंकार करूं। जो व्यक्ति मृत्यु से भयभीत होता है वह केवल ज्ञान का ढोंग रचता है, उसे वास्तविक ज्ञानी नहीं माना जा सकता, वह अज्ञात की जानकारी का दिखावा-भर करता है। कौन जानता है कि मृत्यु, जिसको लोग अपने भय के कारण सबसे अधिक अमंगलकारी समझते हैं, वही उनके लिए सबसे अधिक मंगलकारी सिद्ध हो। क्या इस प्रकार का अज्ञान लज्जास्पद नहीं है कि कोई व्यक्ति उस बात को जानने का दंभ करे जिसे वह नहीं जानता है? केवल इसी दृष्टि से मैं स्वयं को जनसाधारण से भिन्न मानता हूं और संभवतः उनसे अधिक बुद्धिमान होने का दावा कर सकता हूं, क्योंकि मुझे परलोक का तनिक भी ज्ञान नहीं और इसके विषय में मैं स्वयं को ज्ञानी भी नहीं मानता। मैं भली भांति, जानता हूं कि अपने-आप से श्रेष्ठ सत्ता, चाहे वह ईश्वर हो या मनुष्य, के साथ *अन्याय करना और उसकी आज्ञा भंग करना बुरा तथा अपमानजनक* है। मैं निश्चित बुराई के सम्मुख सम्भाव्य भलाई को कभी नहीं टालूंगा और न कभी उससे भयभीत ही होऊंगा। इसलिए, यदि आप मुझे अभी छोड देते हैं, और अन्यूतस की इन बातों में विश्वास नहीं करते, कि चूंकि मुझ पर अभियो[illegible]
चाहिए (और य[illegible]
ही नहीं चाहिए[illegible]
के पुत्र मेरे उपदेश सुनकर बिलकुल ही चौपट हो जाएंगे—और, मान लीजिए आप कहते हैं, कि सुकरात इस बार अन्यूतस की बातों पर ध्यान न देकर, तुम्हें छोड दिया जायेगा परन्तु एक शर्त पर, वह यह कि तुम्हें इस प्रकार की पूछताछ, और इस प्रकार का विचार-विमर्श त्याग देना होगा और यदि तुम्हें फिर ऐसा करते पकड़ा गया, तो तुमको मौत के घाट उतारा जायेगा, यदि आप मुझे छोड़ने के लिए यही शर्त रखते हैं, तो मेरा भी उत्तर सुनिए: अथेन्सवासियो, मैं आपका सम्मान करता हूं। मुझे आपसे स्नेह है, परन्तु मैं आपके बजाय ईश्वर की आज्ञा का ही पालन करूंगा और जब तक मुझमें शक्ति है, मेरी सांस है, मैं दर्शन के अभ्यास और इसकी शिक्षा देने से बाज नहीं आऊंगा। जो भी व्यक्ति मुझे मिलेगा, मैं उससे अपने ढंग से कहूंगा, "अरे ओ मेरे मित्र! विशाल, महान् तथा

ज्ञानी अथेन्स नगर के नागरिक ! तुम अधिकाधिक धन, सम्मान और यश के ढेर लगा रहे हो और ज्ञान, सत्य तथा आत्मा की उन्नति का ध्यान नहीं रखते इस बात पर तुम्हें लज्जा भी नहीं आती ? इस आत्मा के विषय में तुम न कभी सोचते हो न इसकी चिन्ता ही करते हो।" और यदि वह व्यक्ति, जिसके साथ मेरा वाद-विवाद हो रहा हो, कहे कि हां, मैं इनका खूब ध्यान रखता हूं, तो मैं उसको तुरन्त ही छोडूंगा नहीं। मैं उसके साथ पूछताछ तथा जिरह करूंगा और यदि मैं गुणहीन होते हुए भी उसको अपना गुणगान करते हुए पाऊंगा, तो मैं उसको आड़े हाथों लूंगा कि तुम उत्तम वस्तु को हलकी और हलकी को उत्तम मानते हो। मैं यही शब्द प्रत्येक मिलने वाले व्यक्ति के सामने दुहराऊंगा, चाहे वह बूढ़ा हो या जवान, स्वदेशी हो या विदेशी, परन्तु विशेषकर यहां के नागरिकों के सामने, क्योंकि वे मेरे *भाइयों के समान हैं।* आपको यह जानना चाहिए कि ईश्वर का यही आदेश है और मेरे विचारानुसार ईश्वर के प्रति मेरी इस सेवा से बढ़कर आज तक इस राज्य में कोई अच्छा कार्य नहीं हुआ, क्योंकि मैं केवल इतना ही करता हूं कि घूमता-घामता बूढ़े तथा जवान आप सबको जताता फिरता हूं कि आपको स्वयं अपने-आप की अथवा अपनी सम्पत्ति की चिन्ता नहीं करनी चाहिए, बल्कि सर्वप्रथम और विशेष रूप से अपनी आत्मा की उन्नति का ही ध्यान रखना चाहिए। मैं आपसे कहता फिरता हूं कि धन से गुण की प्राप्ति नहीं होती, बल्कि गुण ही धन है और मनुष्य के सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत हितों का स्रोत है। यही मेरी शिक्षा है और यदि मेरे यही सिद्धान्त नवयुवकों को बिगाड़ते हैं, तो मैं एक दुष्ट व्यक्ति हूं, परन्तु यदि कोई कहे कि यह मेरी शिक्षा नहीं, तो वह झूठ बोल रहा है। इसलिए हे, अथेन्सवासियो ! मैं आपसे कहे देता हूं कि चाहे आप अन्यूतस के कहने पर चलें या न चलें, चाहे आप मुझे दोषमुक्त करें या न करें, आप भले ही कुछ भी करें, आप यह बात समझ लें कि मैं अपने तौर-तरीकों से बाज नहीं आऊंगा, भले ही मुझे कई बार क्यों न मरना पड़े।

अथेनियो, आप विघ्न मत डालें ! मेरी बात सुनें। हमारे बीच यह बात निश्चित हो चुकी थी कि आप मेरी सारी बातें सुनेंगे। अभी मुझे कुछ और भी कहना है, जिस पर सम्भवतः आप शोर मचाना चाहेंगे, परन्तु मैं सोचता हूं कि मेरी बातें सुनना आपके लिए हितकर होगा, इसलिए मैं प्रार्थना करता हूं कि आप चिल्लाने मत लगिएगा। मैं आपको इस बात का बोध कराऊंगा कि यदि आप मुझ जैसे व्यक्ति को मारेंगे तो मुझसे कहीं अधिक स्वयं अपने-आप को ही पीड़ित करेंगे। मुझे कोई भी पीड़ित

आचरण निश्चय ही आपत्तिजनक होगा। ऐसी स्थिति मे मुझे देवताओ की सत्ता न मानने के आरोप मे न्यायालय यदि स्पष्टीकरण म गता है तो वह न्यायोचित काम ही करेगा क्योकि यह मेरा अपराध ही होगा यदि मैं मृत्यु के भय से देववाणी की अवहेलना करू या ज्ञानी न होते हुए भी ज्ञानी होने का अहकार करू। जो व्यक्ति मृत्यु से भयभीत होता है वह केवल ज्ञान का ढोग रचता है, उसे वास्तविक ज्ञानी नही माना जा सकता, वह अज्ञात की जानकारी का दिखावा-भर करता है। कौन जानता है कि मृत्यु, जिसको लोग अपने भय के कारण सबसे अधिक अमगलकारी समझते हैं, वही उनके लिए सबसे अधिक मगलकारी सिद्ध हो। क्या इस प्रकार का अज्ञान लज्जास्पद नहीं है कि कोई व्यक्ति उस बात को जानने का दभ करे जिसे वह नही जानता है ? केवल इसी दृष्टि से मैं स्वय को

[illegible]

जानता हू कि अपने-आप से श्रेष्ठ सत्ता, चाहे वह ईश्वर हो या मनुष्य के साथ अन्याय करना और उसकी आज्ञा भग करना बुरा तथा अपमानजनक है। मैं निश्चित बुराई के सम्मुख सम्भाव्य भलाई को कभी नही टालूगा और न कभी उससे भयभीत ही होऊगा। इसलिए, यदि आप मुझे अभी छोड देते है, और अन्यूतस की इन बातो मे विश्वास नही करते, कि चूकि मुझ पर अभियो[illegible]
चाहिए (और य [illegible]
ही नही चाहिए [illegible]
के पुत्र मेरे उपदेश सुनकर बिलकुल ही चौपट हो जाएगे—और, मान लीजिए आप कहते है, कि सुकरात इस बार अन्यूतस की बातो पर ध्यान न देकर, तुम्हे छोड दिया जायेगा परन्तु एक शर्त पर, वह यह कि तुम्हे इस प्रकार की पूछताछ, और इस प्रकार का विचार-विमर्श त्याग देना होगा और यदि तुम्हे फिर ऐसा करते पकडा गया, तो तुमको मौत के घाट उतारा जायेगा, यदि आप मुझे छोडने के लिए यही शर्त रखते है, तो मेरा भी उत्तर सुनिए : अथेन्सवासियो, मैं आपका सम्मान करता हू। मुझे आपसे स्नेह है, परन्तु मैं आपके बजाय ईश्वर की आज्ञा का ही पालन करूगा और जब तक मुझमे शक्ति है, मेरी सास है, मैं दर्शन के अभ्यास और इसकी शिक्षा देने से बाज नही आऊगा। जो भी व्यक्ति मुझे मिलेगा, मैं उससे अपने ढग से कहूगा, "अरे ओ मेरे मित्र ! विशाल, महान् तथा

ज्ञानी अथेन्स नगर के नागरिक ! तुम अधिकाधिक धन, सम्मान और यश के ढेर लगा रहे हो और ज्ञान, सत्य तथा आत्मा की उन्नति का ध्यान नही रखते इस बात पर तुम्हे लज्जा भी नही आती ? इस आत्मा के विषय मे तुम न कभी सोचते हो न इसकी चिन्ता ही करते हो।" और यदि वह व्यक्ति, जिसके साथ मेरा वाद विवाद हो रहा हो, कहे कि हा, मैं इनका खूब ध्यान रखता हू, तो मैं उसको तुरन्त ही छोडूगा नही। मैं उसके साथ पूछताछ तथा जिरह करूगा और यदि मैं गुणहीन होते हुए भी उसको अपना गुणगान करते हुए पाऊगा, तो मैं उसको आडे हाथो लूगा कि तुम उत्तम वस्तु को हलकी और हलकी को उत्तम मानते हो। मैं यही शब्द प्रत्येक मिलने वाले व्यक्ति के सामने दुहराऊगा, चाहे वह बूढ़ा हो या जवान, स्वदेशी हो या विदेशी, परन्तु विशेषकर यहा के नागरिको के सामने, क्योंकि वे मेरे भाइयो के समान हैं। आपको यह जानना चाहिए कि ईश्वर का यही आदेश है और मेरे विचारानुसार ईश्वर के प्रति मेरी इस सेवा से बढ़कर आज तक इस राज्य म कोई अच्छा कार्य नही हुआ, क्योंकि मैं केवल इतना ही करता हू कि घूमता घामता बूढे तथा जवान आप सबको जताता फिरता हू कि आपको स्वय अपने-आप की अथवा अपनी सम्पत्ति की चिन्ता नही करनी चाहिए, बल्कि सर्वप्रथम और विशेष रूप से अपनी आत्मा की उन्नति का ही ध्यान रखना चाहिए। मैं आपसे कहता फिरता हू कि धन स गुण की प्राप्ति नही होती, बल्कि गुण ही धन है और मनुष्य के सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत हितो का स्रोत है। यही मेरी शिक्षा है और यदि मेरे यही सिद्धान्त नवयुवको को बिगाडते हैं, तो मैं एक दुष्ट व्यक्ति हू, परन्तु यदि कोई कहे कि यह मेरी शिक्षा नही, तो वह झूठ बोल रहा है। इसलिए ह, अथेन्सवासियो ! मैं आपसे कहे देता हू कि चाहे आप अन्यूतस के कहने पर चलें या न चलें, चाहे आप मुझे दोषमुक्त करें या न करें आप भले ही कुछ भी करें, आप यह बात समझ लें कि मैं अपने तौर-तरीको से बाज नही आऊगा, भले ही मुझे कई बार क्यो न मरना पडे।

अथेनियो, आप विघ्न मत डालें ! मेरी बात सुनें। हमारे बीच यह बात निश्चित हो चुकी थी कि आप मेरी सारी बातें सुनेंगे। अभी मुझे कुछ और भी कहना है जिस पर समवत आप शोर मचाना चाहेंगे, परन्तु मैं सोचता हू कि मेरी बातें सुनना आपके लिए हितकर होगा, इसलिए मैं प्रार्थना करता हू कि आप चिल्लाने मत लगिएगा। मैं आपको इस बात का बोध कराऊगा कि यदि आप मुझ जैसे व्यक्ति को मारेंगे तो मुझसे कही-अधिक स्वयं अपने-आप को ही पीडित करेंगे। मुझे कोई भी पीडित नही कर

आचरण निश्चय ही आपत्तिजनक होगा। ऐसी स्थिति में मुझे देवताओं की सत्ता न मानने के आरोप में न्यायालय यदि स्पष्टीकरण में गता है तो वह न्यायोचित काम ही करेगा क्योंकि यह मेरा अपराध ही होगा यदि मैं मृत्यु के भय से देववाणी की अवहेलना करू या ज्ञानी न होते हुए भी ज्ञानी होने का अहकार करू। जो व्यक्ति मृत्यु से भयभीत होता है वह केवल ज्ञान का ढोंग रचता है, उसे वास्तविक ज्ञानी नही माना जा सकता, वह अज्ञात की जानकारी का दिखावा-भर करता है। कौन जानता है कि मृत्यु, जिसको लोग अपने भय के कारण सबसे अधिक अमगलकारी समझते हैं, वही उनके लिए सबसे अधिक मगलकारी सिद्ध हो। क्या इस प्रकार का अज्ञान लज्जास्पद नही है कि कोई व्यक्ति उस बात को जानने का दभ करे जिसे वह नही जानता है? केवल इसी दृष्टि से मैं स्वय को जनसाधारण से भिन्न मानता हू और सभवत उनसे अधिक बुद्धिमान होने का दावा कर सकता हू, क्योंकि मुझे परलोक का तनिक भी ज्ञान नहीं और इसके विषय मे मैं स्वय को ज्ञानी भी नहीं मानता। मैं भली भाति, जानता हू कि अपने आप से श्रेष्ठ सत्ता, चाहे वह ईश्वर हो या मनुष्य, के साथ अन्याय करना और उसकी आज्ञा भग करना बुरा तथा अपमानजनक है। मैं निश्चित बुराई के सम्मुख सम्भाव्य भलाई को कभी नही टालूगा और न कभी उससे भयभीत ही होऊगा। इसलिए, यदि आप मुझे अभी छोड देते हैं, और अन्यूतस की इन बातो मे विश्वास नही करते, कि चूकि मुझ पर अभियोग लगाया गया है इस कारण मुझे मृत्यु दण्ड मिलना ही चाहिए (और यदि मुझे दण्ड नही मिलता है, तो मुझ पर मुकदमा चलना ही नही चाहिए था), और यह कि यदि मैं इस बार बच निकला तो आपके पुत्र मेरे उपदेश सुनकर बिलकुल ही चौपट हो जाएगे—और, मान लीजिए आप कहते है, कि सुकरात इस बार अन्यूतस की बातो पर ध्यान न देकर, तुम्हे छोड दिया जायगा परन्तु एक शर्त पर, वह यह कि तुम्हें इस प्रकार की पूछताछ, और इस प्रकार का विचार-विमर्श त्याग देना होगा और यदि तुम्हे फिर ऐसा करते पकडा गया, तो तुमको मौत के घाट उतारा जायेगा, यदि आप मुझे छोडने के लिए यही शर्त रखते है, तो मेरा भी उत्तर सुनिए : अथेन्सवासियो, मैं आपका सम्मान करता हू। मुझे आपसे स्नेह है, परन्तु मैं आपके बजाय ईश्वर की आज्ञा का ही पालन करूगा और जब तक मुझमे शक्ति है, मेरी सास है, मैं दर्शन के अभ्यास और इसकी शिक्षा देने से बाज नही आऊगा। जो भी व्यक्ति मुझे मिलेगा, मैं उससे अपने ढग से कहूगा, "अरे ओ मेरे मित्र! विशाल, महान् तथा

ज्ञानी अथेन्स नगर के नागरिक ! तुम अधिकाधिक धन, सम्मान और यश के ढेर लगा रहे हो और ज्ञान, सत्य तथा आत्मा की उन्नति का ध्यान नही रखते इस बात पर तुम्हे लज्जा भी नही आती ? इस आत्मा के विषय मे तुम न कभी सोचते हो न इसकी चिन्ता ही करते हो।" और यदि वह व्यक्ति जिसके साथ मेरा वाद विवाद हो रहा हो, कहे कि हा, मैं इनका खूब ध्यान रखता हू, तो मैं उसको तुरन्त ही छोडूगा नही। मै उसके साथ पूछताछ तथा जिरह करूगा और यदि मै गुणहीन होते हुए भी उसको अपना गुणगान करते हुए पाऊगा, तो मैं उसको आडे हाथो लूगा कि तुम उत्तम वस्तु को हलकी और हलकी को उत्तम मानते हो। मैं यही शब्द प्रत्येक मिलने वाले व्यक्ति के सामने दुहराऊगा, चाहे वह बूढा हो या जवान, स्वदेशी हो या विदेशी, परन्तु विशेषकर यहा के नागरिको के सामने, क्योकि वे मेरे भाइयो के समान हैं। आपको यह जानना चाहिए कि ईश्वर का यही आदेश है और मेरे विचारानुसार ईश्वर के प्रति मेरी इस सेवा से बढकर आज तक इस राज्य मे कोई अच्छा कार्य नहीं हुआ, क्योंकि मैं केवल इतना ही करता हू कि घूमता-घामता बूढे तथा जवान आप सबको जताता फिरता हू कि आपको स्वय अपने-आप की अथवा अपनी सम्पत्ति की चिन्ता नही करनी चाहिए, बल्कि सर्वप्रथम और विशेष रूप से अपनी आत्मा की उन्नति का ही ध्यान रखना चाहिए। मैं आपसे कहता फिरता हू कि धन से गुण की प्राप्ति नही होती, बल्कि गुण ही धन है और मनुष्य के सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत हितो का स्रोत है। यही मेरी शिक्षा है और यदि मेरे यही सिद्धान्त नवयुवको को बिगाडते हैं, तो मैं एक दुष्ट व्यक्ति हू, परन्तु यदि कोई कहे कि यह मेरी शिक्षा नहीं, तो वह झूठ बोल रहा है। इसलिए हे, अथेन्सवासियो ! मैं आपसे कहे देता हूं कि चाहे आप अन्यूतस के कहने पर चलें या न चलें, चाहे आप मुझे दोषमुक्त करें या न करें आप भले ही कुछ भी करें, आप यह बात समझ लें कि मै अपने तौर-तरीको से बाज नही आऊगा, भले ही मुझे कई बार क्यो न मरना पडे।

अथेनियो, आप विघ्न मत डालें ! मेरी बात सुनें। हमारे बीच यह बात निश्चित हो चुकी थी कि आप मेरी सारी बातें सुनेंगे। अभी मुझे कुछ और भी कहना है जिस पर सभवत आप शोर मचाना चाहेंगे, परन्तु मैं सोचता हू कि मेरी बातें सुनना आपके लिए हितकर होगा, इसलिए मैं प्रार्थना करता हू कि आप चिल्लाने मत लगिएगा। मैं आपको इस बात का बोध कराऊगा कि यदि आप मुझ जैसे व्यक्ति को मारेंगे तो मुझसे कही अधिक स्वय अपने-आप को ही पीडित करेंगे। मुझे कोई भी पीडित नही कर

सकता— न मलेतस और न अन्यूतस ही। वे मेरा कुछ भी नहीं बिगाड सकते क्योंकि किसी दुष्ट को अपने से अधिक भले व्यक्ति को पीड़ा पहुचाने का अधिकार नही है। हा, इस बात से इनकार नही किया जा सकता कि अन्यूतस चाहे तो उसे मरवा डाले या उसे देश निकाला दिलवा दे या उसके *नागरिक अधिकार छिनवा दे। इसके बाद वह यह कल्पना करे,* और दूसरे भी ऐसा ही समझें कि वह उस सज्जन को घोर कष्ट पहुचा रहा है तो यह गलत है, मैं इस विचार से सहमत नही। वह जो कर रहा है उसमे निहित पाप, अर्थात् अन्यायपूर्वक किसी को जान से मार डालने का पाप उस कष्ट से कही अधिक अहितकर है।

और अब, अथेन्सवासियो, शायद आपका विचार हो सकता है कि मैं अपने बचाव के लिए दलीलें पेश कर रहा हू। मुझे अपने लिए नही, आप लागो के बचाव के लिए पैरवी करनी है। कही आप मुझे दण्ड देकर पाप के भागी न बन बैठें, क्योकि मैं आपके लिए ईश्वर का दिया हुआ एक उपहार हू। यदि आप मुझे मार डालेंगे तो आपको मेरा उत्तराधिकारी आसानी से नहीं मिलेगा। यदि ऐसी उपमा हास्यप्रद *न हो तो मैं एक* प्रकार की डास* हू जिसे ईश्वर ने इस राज्य को प्रदान किया है और यह राज्य ऐसा घोडा है जो उत्तम तथा कुलीन तो है किन्तु अपने भारी भरकम शरीर के कारण सुस्त पडा रहता है। इसमे जीवन फूकने की आवश्यकता है। मैं ही वह डास हू जिसे ईश्वर ने इस राज्य के पीछे लगा रखा है। मैं सारे दिन, प्रत्येक स्थान पर आप लोगो का पीछा करता रहता हू। आपको चौकन्ना करता हू, बाध्य करता हू झिडकता हू। आपको आसानी से मुझ जैसा दूसरा व्यक्ति नही मिलेगा। इसलिए मैं आपको सुझाव देता हू कि आप मुझे मुक्त कर दीजिए। हो सकता है आप यह सुनकर क्रुद्ध हो (ठीक *वैसे ही, जैसे कि एक सोया हुआ व्यक्ति अचानक जगाये जाने पर होता* है) और आप सोचें कि अन्यूतस की राय के अनुसार आप मुझे सहज ही मार सकते हैं, ताकि आप अपने शेष जीवन मे फिर सोते ही रहें। वह भी तब यदि ईश्वर चिन्तित होकर आपके लिए किसी दूसरे डास को न भेजे। मैं आपसे कहता हू कि मुझे ईश्वर ने उपहारस्वरूप आपको सौंपा है और मेरे निश्चित कार्य का प्रमाण यह है कि यदि मैं *अन्य* व्यक्तियो जैसा होता, तो मैं आपके भले के लिए स्वय अपने सभी प्रयोजनो को त्याग न देता, न इन सभी वर्षों मे उनकी उपेक्षा होते देखना ही सहन करता, न आप लोगो

*जानवरो को काटने वाली मक्खी जिसका डक बहुत तीखा होता है।

के प्रयोजनों मे लगा रहता। एक पिता या बडे भाई की भांति मैं आपसे व्यक्तिगत रूप से मिलकर आपको सदगुणो का सम्मान करने की सीख न देता। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसा आचरण मानवीय प्रकृति जैसा नही। यदि मुझे इससे कुछ लाभ होता या मेरे सदुपदेशों का मुझे मूल्य मिलता, तब भी मेरा ऐसा करना सगत होता, परन्तु अब जैसा कि आप देखते ही हैं मेरे अभियोक्ताओ की गुस्ताखी भी उनको यह कहने का साहस प्रदान नहीं करती कि मैंने कभी किसी से पैसा मांगा या इसकी इच्छा ही की। उनके पास इस बात का कोई भी प्रमाण नही और जो कुछ मैं कहता हू, उसकी सत्यता का पर्याप्त प्रमाण है—मेरी गरीबी।

हो सकता है कि कोई इस बात पर विस्मय प्रकट करे कि मैं यो तो व्यक्तिगत रूप से लोगो को परामर्श देता फिरता हूं या दूसरो के मामलो मे स्वय को व्यस्त रखता हू, फिर खुलेआम जनता मे आकर राज्य को परामर्श देने का साहस क्यो नही करता? मैं आपको इसका कारण बताऊंगा। आप लोगों ने कई बार और भिन्न भिन्न स्थानो पर मुझे मिलने वाले एक सकेत अथवा दैव-सकेत के बारे मे मुझे बोलते हुए सुना है। यह वही देवत्व है, जिसकी मलेतस अपने अभियोग-पत्र मे हसी उडाता है। यह सकेत, जो कि एक प्रकार की ध्वनि जैसा है, मुझे बचपन से ही मिलने लगा था। यह सकेत मुझे कोई काम करने का आदेश तो नही देता किन्तु यदि मैं कोई गलत काम करने लगू तो यह मुझे फौरन टोक देता है। किन्तु यही मुझे राजनीतिज्ञ बनने से रोके रखता है और मेरे विचारानुसार यह ठीक भी है, क्योकि हे अथेनियो, मुझे विश्वास है कि यदि मैंने राजनीति को अपना व्यवसाय बनाया होता, तो मैं कब का मर चुका होता और मैं न आपका भला कर पाता और न अपना ही। मेरे सत्य बोलने पर आप क्रुद्ध न हो। सत्य तो यही है कि कोई भी व्यक्ति किसी राज्य में होने वाली अन्याय तथा अराजकता की अनेकों घटनाओं के विरुद्ध उचित सघर्ष करते हुए आप या किसी अन्य जनसमूह से टक्कर लेकर अपने प्राणों को बचा नही सकता। जो व्यक्ति सत्य के लिए लडता है, वह कितने ही कम समय तक जीवित क्यों न रहे, उसका कार्यस्थल सार्वजनिक न होकर व्यक्तिगत ही होना चाहिए।

मैं जो कहता हू, उसका सशक्त प्रमाण भी दे सकता हू। केवल शाब्दिक रूप में ही नहीं बल्कि व्यावहारिक रूप मे भी जिसको कि आप कही ज्यादा महत्त्वपूर्ण मानते हैं। जरा आपको अपनी ही जीवनी का एक पृष्ठ सुनाऊ, जिससे आपके सामने यह सिद्ध होगा कि मैं मृत्यु के भय से कभी भी अन्याय

के सामने नही झुका हूगा यह जानते हुए भी कि यदि मैं झुकने से इन्कार करता तो मेरी मृत्यु तुरन्त हो गई होती । मैं आपको न्यायालयो की एक कहानी सुनाऊगा । सम्भवत वह रुचिकर न हो, परन्तु सत्य अवश्य है । मैंने हे अथेन्सवासियो ! केवल एक ही बार राज्यपद पर, वह भी सीनेट के सदस्य के रूप मे, काम किया है । आरगिनुसाए के युद्ध के उपरान्त जिन सेनाध्यक्षो ने शवो को नही उठवाया था, उनके मुकदमे के समय मेरी जन-जाति अन्तइओखिस को सभापतित्व मिला था । जैसा कि बाद मे आप सभी मान गये आप लोगो ने विधि-विरुद्ध उन पर सामूहिक रूप से मुकदमा चलाने का सुझाव दिया, परन्तु उस समय प्राइतेनो' मे से केवल मैं ही इस अवैध आचरण के विरुद्ध था और मैंने अपना मत आपके विरुद्ध दिया । जब वक्ताओ ने मुझ पर अभियोग लगाने और मुझे बन्दी बनाने की धमकी दी और आप लोगो ने शोर मचाया तो मैंने विधान और न्याय को अपन पक्ष मे पाकर यह निश्चय किया कि जेल या मृत्यु के भय के कारण मैं आपके अन्याय का साझेदार बनने के बजाय उस खतरे को ही अपनाऊगा । यह बात गणतत्र के दिनो की है, परन्तु जब तीस शासको का कुलीनतत्र जोरो पर था, तो उन्होने मुझे तथा अन्य चार व्यक्तियो को गोलघर मे बुलवा लिया और हमे आदेश दिया कि सलामइस निवासी लेओन को वहा से लाया जाये, क्योकि वे इसको मारना चाहते थे । यह उनके उन आदेशो का नमूना मात्र था, जो कि वे अपने अपराधो मे अधिक से अधिक व्यक्तियो को फसाने के आशय से सदा ही दिया करते थे । इस अवसर पर मैंने केवल शब्दो द्वारा ही नही, व्यावहारिक रूप से भी यह दिखा दिया कि मुझे मृत्यु की तनिक भी चिंता नहीहै । मुझे केवलयही एकचिन्ता लगी रही कि कही मुझसे कोई अन्याय या पाप न हो जाये । इस अत्याचारी शक्ति के सशक्त बाजू डरा-धमकाकर मुझसे कोई अत्याचार नही करवा सके । जब हम गोलघर से बाहर निकले, तो मेरे साथ के दूसरे चार व्यक्ति सलामइस जाकर लेओन को पकड लाये, जबकि मैं चुपचाप अपने घर चला गया, यदि इस घटना के तुरन्त बाद ही तीस शासको की शक्ति का पतन न होता तो इस अपराध के दडस्वरूप मुझे अपने जीवन से हाथ धोने पड गए होते । मेरी इन बातों के अनेको साक्षी मिलेंगे ।

तो क्या आप सचमुच यही कल्पना करते हैं कि म इन बीते हुए वर्षों में यदि एक राजनीतिज्ञ का जीवन बिताते हुए एक भले व्यक्ति की भाति सदैव भलाई का पक्ष लेता और न्याय को, जैसा कि मुझे करना चाहिए, प्रथम स्थान देता, तो बचकर निकल सकता था ? नहीं, अथेन्सवासियो ! बिल्कुल

नहीं। न मैं और न कोई दूसरा व्यक्ति ही बचकर निकला। मैं सदैव अपने कर्म में, चाहे वह व्यक्तिगत था या जनसाधारण से सम्बन्धित, स्थिर ही रहा हू और मैंने कभी किसी व्यक्ति को गलत कामो मे सहयोग नहीं दिया। उन्हें भी नही जिन्हे कि अपवाद के लिए मेरा शिष्य कहा जाता है। मेरा अभिप्राय यह नहीं कि मेरे कुछ निश्चित शिष्य भी हैं, परन्तु मुझे अपने अनुभव का अनुसरण करते समय, जो यदि ऐसा भी कोई बूढा या नवयुवक मिलता है जो मेरी बातें सुनना पसन्द करता है, तो मैं उसका बहिष्कार नही करता। मैं केवल पैसा देन वालो के साथ ही बात-चीत नही करता हू। प्रत्येक व्यक्ति वह चाहे निर्धन हो या धनवान, मेरे साथ प्रश्नोत्तर कर सकता है और मेरी बातें सुन सकता है। बाद मे वह व्यक्ति दुष्ट निकलता है या भला इसके लिए मुझे उत्तरदायी ठहराना न्यायसगत नही, क्योकि न तो कभी मैंने उसे कोई शिक्षा ही दी और न कभी शिक्षा देने का दावा किया। यदि कोई कहता है कि किसी ने मुझसे व्यक्तिगत रूप से कोई ऐसी बात सुनी या सीखी है, जो शेष ससार ने न सुनी हो, तो मैं आपसे कहे देता हू कि वह झूठ बोल रहा है।

परन्तु मुझसे पूछा जा सकता है कि लोग मेरे साथ निरन्तर बातचीत करने मे आनद क्यो पाते हैं? इसके विषय मे अथेनियो, मैं पहले ही आपको सब कुछ सच सच बता चुका हू। वे ज्ञानी होने की डींग हाकने वालो के साथ भरा तर्क-वितर्क सुनना पसन्द करते है। इसमे आनन्द आता है। दूसरो के साथ इस प्रकार तर्क-वितर्क करने का भार मुझे ईश्वर ने सौंपा है। इसका सकेत मुझे प्रत्येक आभास से, प्रत्येक देववाणी से तथा हर उस ढग से मिला है, जिससे कि आज तक मनुष्य को देवशक्ति की इच्छा का ज्ञान हुआ हो। हे अथेन्स वासियो! यह सब सत्य है और यदि यह झूठ हो तो तुरन्त ही इसका खण्डन किया जायेगा। यदि मैं युवको को बिगाडता रहा हू या बिगाड रहा हू, तो उनमे से जो अब प्रौढ़ता प्राप्त कर चुके हो और समझ चुके हो कि मैंने उनकी युवावस्था मे उनको बुरी शिक्षा दी है, उन्हे अभियोक्ता बनकर सामने आना चाहिए और मुझसे बदला लेना चाहिए। यदि वे स्वय सामने आना अच्छा न समझें, तो उनके कुछ नातेदारो पिता, भाई या अन्य सम्बन्धियो को यह प्रकट करना चाहिए कि मेरे हाथो उनके परिवारो को कौन से कष्ट भोगने पडे है। उनके बोलने का यही अवसर है और उनमे से अनेको मुझे यही न्यायालय मे दिखाई देते हैं। वह रहा क्राइतो, जो मेरी ही आयु तथा मेरे ही हलके" का है और वह रहा क्राइतोबुलस का पुत्र, वह भी मुझे दिखाई दे रहा है और फिर सफेतस

का लेसेनिअस, जो कि ऐस्खिनस का पिता है, वह भी उपस्थित है और एपिजेनेस का पिता सेफिसस. वासी अन्तिफोन भी है ओर मेरे साथ सम्पर्क रखने वालो मे से बहुतो के भाई भी यहा उपस्थित हैं। यह रहा थियोस्दोताइदेस का पुत्र तथा थियोदोत का भाई निकोस्त्रातस, (चूकि थियोदोतस अब मर चुका है, इस कारण कम-से-कम वह इसको रोकने का प्रयास तो नही कर सकता) और वह है देमोदोकस का पुत्र परालस, थेएजेस उसका एक भाई था, अरिस्तोन का पुत्र अदेइमानतस, जिसका भाई प्लेटो यही उपस्थित है और अपोलोदोरस के भाई अएनतोदोरस को भी मैं देख रहा हू। मै और भी बहुतो के नाम ले सकता हू। मलेतस को अपने भाषण मे इनमे से कुछ को साक्षियो के रूप मे प्रस्तुत करना चाहिए था। यदि वह भूल गया हो तो लीजिए मै उसके लिए मैदान खाली छोडता हू। वह अब भी उनको प्रस्तुत कर सकता है और वह जरा यह तो कहे कि क्या उसके पास प्रस्तुत करने को इस प्रकार का कोई प्रमाण है ? नही, अथेन्सवासियो ! सत्य तो इसके बिल्कुल विपरीत है, क्योकि यह सभी अपने सम्बन्धियो को दुख देने वाले, (जैसे कि मलेतस और अन्यूतस मुझे सम्बोधित करते हैं) मुझ भ्रष्टाचारी के पक्ष मे ही अपनी साक्षी देने को तैयार हैं। केवल बिगडे हुए नवयुवक ही नही, जिसके कुछ गोपनीय कारण हो सकते हैं, बल्कि उनके निष्कलक प्रौढ नातेदार भी मेरा ही पक्ष लेंगे। क्या कारण है कि वे भी मेरी ही सहायता करना चाहेगे ? भला क्यो न करें, निश्चय ही वे सत्य और न्याय के समर्थक हैं, इसलिए भी, कि वे जानते हैं कि मै सच बोल रहा हू और मलेतस एक झूठा आदमी है।

तो हा, अथेन्सवासियो ! मैं केवल यही और इसी प्रकार की सफाई प्रस्तुत कर सकता हू। फिर भी, दो शब्द और सुनिए। सम्भवत यहा कोई ऐसा व्यक्ति हो, जो यह याद करते ही मुझ पर क्रुद्ध हो कि उसने स्वय किसी ऐसे ही बल्कि इससे भी कम गम्भीर अवसर पर किस प्रकार अश्रु बहा-बहाकर न्यायधीशो से प्रार्थना और याचना की और किस प्रकार उसने अपने अनेको मित्रो तथा सम्बन्धियो सहित अपने बच्चो को न्यायालय मे लाकर एक हृदय-विदारक दृश्य प्रस्तुत किया था, परन्तु मै जबकि मुझे सम्भवत जान के लाले पडे है, इस प्रकार का कोई भी कदम नही उठाऊगा। आचरणों का यह अन्तर हो सकता है, उस व्यक्ति के मस्तिष्क मे चढ बैठे और वह मेरा विरोधी बन जाये और इस प्रकार मुझसे चिढकर गुस्से मे अपना मत दे बैठे। यदि आपके बीच ऐसा ही कोई

व्यक्ति बैठा हो, देखिए मैं यह नहीं कहता कि यहां ऐसा कोई है, तो उसको मैं साफ-साफ उत्तर देता हू— हे मेरे मित्र ! मैं एक मनुष्य हू और अन्य मनुष्यों की भाति हाड-मास का पुतला हू, "लकडी या पत्थर" का बना हुआ नही हू, जैसे कि होमर कहता है, और फिर मैं भी गृहस्थ हू, बाल-बच्चो वाला हू। हा, एथेनियो, मेरे तीन लडके हैं। एक तो तरुण अवस्था प्राप्त कर चुका है और शेष दो अभी छोटे हैं, परन्तु फिर भी मैं उनमें से किसी को यहा आपके सम्मुख अपनी मुक्ति के लिए विनय करने के आशय से नहीं लाऊगा। ऐसा क्यो ? अपने आत्मसम्मान या आपके प्रति कोई हीनभावना रखने के कारण नहीं। मैं मृत्यु से डरता हू या नही, यह प्रश्न ही भिन्न है, जिसके सम्बन्ध में मैं अभी नहीं बोलूगा। बस, इस कारण कि जनमत को शिरोधार्य न करके मैं ऐसा अनुभव कर रहा हू कि वैसा आचरण मेरे लिए, आपके लिए और समस्त राज्य के लिए अपमान-जनक होगा। जो व्यक्ति मेरी उम्र का हो चुका हो और अपने प्रज्ञान के कारण नाम कमा चुका हो, उसे स्वय को निकृष्ट नही बनाना चाहिए। चाहे मैं इस सम्मान का पात्र होने योग्य हू या नहीं, ससार ने तो यह निर्णय दे ही दिया है कि सुकरात किसी-न किसी रूप मे औरो से श्रेष्ठ है। यदि आपमें से व, जो ज्ञान, साहस या और किसी गुण के कारण श्रेष्ठ कहलाते हैं, अपने-आप को इस प्रकार निकृष्ट बनायें तो उनका जीवन कितना अपमानजनक होगा ! मैंने सुविख्यात व्यक्तियो को दण्ड दिये जाने पर अति विचित्र व्यवहार करते देखा है। मुझे तब ऐसा लगा, मानो वे कल्पना कर रहे हो कि मृत्यु के बाद वे कोई भयानक कष्ट उठाने जा रहे हो, और यह कि वे सदा के लिए जीवित रह जाते, यदि आप उनको केवल जिन्दा छोड देते। मेरे विचारानुसार ऐसे व्यक्ति राज्य पर कलक के समान हैं और यदि कोई विदेशी यहा आये, तो वह उनके बारे मे कहेगा, कि एथेन्स के सुविख्यात व्यक्ति जिनका सम्मान स्वय एथेन्सनिवासी करते हैं, और सिर झुकाकर जिनके आदेशों का पालन करते हैं, वे स्त्रियो से भी गए-बीते हैं। मैं तो यही कहूगा, कि हममें से प्रतिष्ठित व्यक्तियो को इस प्रकार के तमाशे नही करने चाहिए। यदि ये तमाशे किए ही जाते हैं, तो आप लोगो को इन पर रोक लगानी चाहिए, बल्कि आपको तो यह भी कहना चाहिए कि आप शान्तिपूर्वक सब कुछ सहन करने वाले व्यक्ति की अपेक्षा ऐसे व्यक्ति को दण्ड देना अधिक पसन्द करेंगे जो करुण दृश्य उत्पन्न करके सारे नगर की नाक कटवाता है।

परन्तु लोकनिन्दा के प्रश्न को जाने दें तो भी यह कुछ अनुचित-सा लगता है कि न्यायाधीश को, सही सूचना देकर उसे सन्तुष्ट करने के बजाय उससे कृपादृष्टि की याचना कर रिहाई की माग की जाये। उसका कर्तव्य न्याय करना है, न कि न्याय का उपहार बनाकर प्रदान करना और उसने शपथ ली है कि वह विधि के अनुसार न्याय करेगा, न कि अपनी इच्छा के अनुसार। मुझे आप लोगों को इस प्रकार से कपट-मिश्रित न्याय करने के लिए प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए और न आपको ही स्वयं अपने-आप को ऐसा करने के लिए उत्साहित होने देना चाहिए—इसमे धर्मनिष्ठा तो हो ही नहीं सकती। इसलिए, मुझे ऐसा कर्म करने पर बाध्य न किया जाए जिसको कि मैं भ्रष्ट, अपमानजनक तथा अनुचित समझता हू, वह भी विशेषकर इस अवसर पर, जबकि मलेतस के अभियोगों के अनुसार मुझ पर भ्रष्ट होने का ही मुकदमा चल रहा है। क्योंकि हे अथेन्सवासियो, यदि मैं प्रबोधन और याचना के बल पर आपकी शपथों को वश मे कर लेता हू, तो उसका अभिप्राय यही होगा कि मैं आपको देवताओं के अस्तित्व मे अविश्वास रखने की शिक्षा देता हू, और इस प्रकार अपना बचाव करने से मै अपने-आप को उनमे अविश्वास रखने का अपराधी ठहराऊगा। परन्तु बात ऐसी नहीं, बिलकुल भिन्न है, क्योंकि देवताओं के अस्तित्व मे मेरी अटल निष्ठा है और कई रूपों मे मेरी यह निष्ठा, मेरे अभियोक्ताओं के विश्वास से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। अब मैं अपना मुकदमा आप लोगों तथा ईश्वर को सौंपता हू। आप इस पर ऐसा निर्णय लें जो हम सभी के लिए हितकर सिद्ध हो।

हे अथेन्सवासियो आपने बहुमत द्वारा मुझे अपराधी पाया और मुझे मृत्युदंड के योग्य समझा यह देखकर मेरे मन को ठेस नहीं पहुची, इसके कारण हैं। मैं समझ गया था कि यही होने वाला है। मुझे आश्चर्य इस बात का है कि मत इस प्रकार लगभग बराबर ही हैं क्योंकि मेरा अनुमान था, कि मेरे विरुद्ध मत देने वालों की सख्या बहुत ही अधिक होगी। अब देखता हू कि यदि तीस एक मत पासा पलटते तो मुझे मुक्त कर दिया जाता और जहां तक मेरा विचार है, अब मैं दावे से कह सकता हू कि मैं मलेतस के हथकण्डे से बच निकला हू। हा, यह भी कह सकता हू कि अन्यूतस तथा लाइकोन की सहायता के बिना, जैसा कि कोई भी देख सकता है, उसके पक्ष मे विधिवत् आवश्यक मतों का पाचवा भाग भी नहीं पड़ता, और वैसी स्थिति मे उसको हजार ड्राक्मों का जुर्माना भुगतना

पड़ता।

तो हां, वह मेरे लिए मृत्युदण्ड का प्रस्ताव रखता है और मैं, हे अथेनियो ! अपनी ओर से क्या प्रस्ताव रखूं ? स्पष्टत वही जो मेरे योग्य हो और मेरे योग्य क्या है ? उस व्यक्ति के साथ कैसा व्यवहार किया जाये, जिसको आजीवन बेकार बैठने की नहीं सूझी, और जो उन चीजो के प्रति निश्चिन्त रहा हो, जिनके लिए अनेको सिर खपाते है, जैसे—धन, पारिवारिक सरोकार, सेना के उच्च पद, सभा मे बोलना, न्यायाधिकारियो के पद, षड्यन्त्र, तथा सभाए। यह सोचकर कि मै वास्तव मे इतना ईमानदार हू कि एक राजनीतिज्ञ बनकर जी नही सकता, मै उस ओर लपका ही नहीं जहा कि मै न आपका कुछ भला कर सकता था, और न अपना ही बल्कि मै तो उस ओर जा निकला, जहा कि मै आप सभी लोगो का व्यक्तिगत रूप से अत्यधिक भला कर सकता हू। मैने आपमे से प्रत्येक को इस बात के लिए प्रेरित करने का प्रयत्न किया कि आपको अपने पारिवारिक सरोकारो से पूर्व स्वय अपनी परख करते हुए अपने गुण तथा ज्ञान की खोज करनी चाहिए, अपने राज्य के सरोकारो से पूर्व आपको अपने राज्य के कल्याण का ध्यान रखना चाहिए और इसी क्रम का अनुसरण कर प्रत्येक कार्य किया जाना चाहिए। तो ऐसे व्यक्ति के साथ कैसा व्यवहार किया जाए ? हे अथेनियो ! यदि उसको यथेष्ट प्रतिफल देना हो, तो अवश्य ही उसके साथ भलाई की जानी चाहिए और वह भी उसके योग्य होनी चाहिए जो आपका शुभचिन्तक है और आपको शिक्षा देने के लिए फुर्सत का अभिलाषी है। उस दीन के लिए यथायोग्य प्रतिफल क्या हो सकता है ? प्रयतानेअम* मे उसके निर्वाह का प्रबंध कराये जाने के सिवा उसके लिए और कोई उचित पुरस्कार नही हो सकता, इस पुरस्कार पर, हे अथेनियो, ओल्युम्पिया मे घोडों या रथो की दौड मे, चाहे रथो मे दो या दो से अधिक घोडे जुते हो, पुरस्कृत नागरिक से कहीं अधिक अधिकार उसी दीन का है। क्योकि उस पुरस्कृत नागरिक के पास पर्याप्त मात्रा मे धन होता है, जबकि मैं दीन हू और इसलिए भी कि वह आपको खुशी के दृश्य दिखाता है, जबकि मै आपको वास्तविक खुशी प्रदान करता हू और यदि मैं अपने दण्ड का विवरण स्वच्छन्दता से दू, तो कहना न होगा कि प्रयतानेअम मे मेरे निर्वाह का प्रबंध करना ही मेरे लिए न्यायसगत प्रतिफल रहेगा।

शायद आप सोचते होगे कि अब इस प्रकार की बातें करके मै आप लोगों को वैसे ही उकसाता हू, जैसे कि इससे पूर्व मैने आंसुओं और

प्रार्थना के बारे में बोलकर किया था, लेकिन ऐसी कोई बात नहीं। मैं केवल इसलिए बोलता हूं कि मुझे पूरा विश्वास है कि मैंने कभी भी जान-बूझकर किसी को हानि नहीं पहुंचाई, हालांकि मैं आपको इस बात का विश्वास नहीं दिला सका। मेरे पास समय थोड़ा था। यदि अथेन्स में भी अन्य नगरों की भांति यह विधान होता कि मृत्युदण्ड का निर्णय केवल एक ही दिन में नहीं होना चाहिए, तो मेरा ख्याल है कि मैं आप लोगों को अपनी बातों का विश्वास दिला ही देता। मैं एक ही चुटकी में बड़े-बड़े अभियोगों का खण्डन नहीं कर सकता, मुझ पूरा विश्वास है कि मैंने कभी भी किसी की हानि नहीं पहुंचाई। अतः मैं निश्चय ही स्वयं को भी हानि नहीं पहुंचाऊंगा। मैं स्वयं को किसी बुराई के योग्य नहीं मानता और न अपने लिए किसी दण्ड का ही प्रस्ताव रखूंगा। भला मैं रखूं भी क्या? इसलिए कि मैं मलेतस द्वारा प्रस्तावित मृत्युदण्ड से डरता हूं? जबकि मुझे यह मालूम ही नहीं कि मृत्यु अच्छी चीज है या कि बुरी, तो मैं ऐसे दण्ड का प्रस्ताव क्या रखूं, जो कि निश्चय ही बुरा हो? क्या स्वयं को कारावास में रखे जाने का सुझाव दूं? परन्तु मैं कारावास में क्यों रहूं और वर्ष के लिए नियुक्त न्यायाधीशों तथा 'एकादश' की गुलामी क्या करूं? यह भी हो सकता है कि मैं जुर्माने का दण्ड स्वीकार करूं और इसके चुकाये जाने तक जेल में पड़ा रहूं। परन्तु फिर वही आपत्ति, मुझे तो जेल में ही पड़े रहना होगा, क्योंकि जुर्माना देने के लिए मेरे पास पैसा ही नहीं, तो दे ही क्या सकता हूं? और यदि मैं देश-निकाला कहूं (आप भी सम्भवतः यही दण्ड देने का निर्णय करेंगे), तो निश्चय ही जीवन के अनुराग ने मुझे अन्धा बनाया होगा, जो मैं इतना नासमझ बनूं कि पराये व्यक्तियों द्वारा अपनाये जाने की आशा करूं, जबकि आप मेरे ही नगर के निवासी होकर मेरे शब्दों और मेरी बातों को सहन नहीं कर सकते और इनको इतना दुःखदायी तथा घिनौना मानते हैं कि अब आप लोग मेरी एक भी नहीं सुनना चाहते। नहीं, अथेनियो! बिलकुल नहीं, यह सम्भव नहीं हो सकता। मेरा जीवन भी क्या जीवन होगा, जो मैं इस आयु पर आकर एक नगर से दूसरे में घूमता-भटकता फिरूं, बार-बार अपने स्थान को बदलता फिरूं और प्रत्येक बार बाहर धकेला जाऊं। मुझे विश्वास है कि जहां कहीं भी मैं जाऊंगा, वहां भी यहां की भांति नवयुवक मुझे घेर लेंगे और यदि मैं उनको भगाऊंगा, तो उनके बुजुर्ग उनकी प्रार्थना पर मुझे निकाल बाहर करेंगे। यदि मैं उनसे सम्पर्क बढ़ाता हूं, तो उनके पिता तथा मित्र उनकी भलाई को ध्यान में

रखते हुए मुझे निकाल बाहर करेंगे।

कोई पूछेगा—हा, सुकरात! पर क्या तुम चुप नही रह सकते? क्योंकि फिर तो तुम विदेश मे किसी भी नगर मे जा सकते हो और लोग तुम्हारे बीच हस्तक्षेप नहीं करेंगे। देखिए, मुझे आपको इस प्रश्न का उत्तर समझाने में बहुत ही कठिनाई का अनुभव हो रहा है। यदि मैं आपसे यह कहू कि आपकी राय के अनुसार चलना ईश्वर की आज्ञा को भग करना होगा और इसीलिए मैं चुप नही रह सकता, तो आप लोग विश्वास नहीं करेंगे कि मैं सत्य बोल रहा हू। यदि मैं यह कहू कि प्रतिदिन गुणो और उन दूसरी बातों की (जिनके बारे मे आप मुझे स्वय अपना तथा दूसरों का परीक्षण करते हुए देखते हैं) वार्ता छेड़ने मे ही मनुष्य की अधिकतम भलाई है और यह कि परीक्षणरहित जीवन तो जीने योग्य ही नही, तो आपके मुझ पर विश्वास करने की सभावना और भी कम है फिर भी जो कुछ मैं कहता हू सत्य है। यद्यपि आप लोगो को इस पर विश्वास दिलाना मेरे वश की बात नही। इसके अतिरिक्त, मैं कभी भी यह सोचने का अभ्यस्त नही रहा कि मैं किसी प्रकार की हानि उठाने के योग्य हू। यदि मेरे पास धन होता, तो मैं अपने अपराध की दर अपनी पूजी के अनुसार लगा देता और मेरी स्थिति इतनी खराब न होती, परन्तु मेरे पास कुछ भी नही है इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करूगा कि मेरा जुर्माना मेरे साधनों के समानुपात रखा जाए। हा, सम्भवत. मैं एक मीना दे सकता हू। इसलिए मैं इतने ही जुर्माने का सुझाव रखता हू। यहा उपस्थित मेरे मित्र प्लेटो, क्राइतो, क्राइतोबुलस तथा अपोलोदोरस मुझे तीस मीने कहने का आदेश देते हैं और वे इस रकम के लिए जामिन रहेंगे। अत तीस मीने का दण्ड निर्धारित किया जाए, जिस रकम के लिए ये, मेरे मित्र यथेष्ट जमानत दे सकेंगे।

हे अथेसवासियो! आप अधिक समय तक नगर के आलोचकों द्वारा की गई बदनामी से बच नही सकते। वे यही कहेंगे कि आपने सुकरात, एक ज्ञानी पुरुष को मारा। हालाकि मैं ज्ञानी नही हू, फिर भी जब वे आपको धिक्कारेंगे तो वे मुझे ज्ञानवान् ही कहेंगे। यदि आप कुछ समय और प्रतीक्षा करते, तो आपकी इच्छा प्राकृतिक क्रम के अनुसार ही पूर्ण हो जाती, क्योंकि जैसा आप देख ही रहे है, मेरी आयु बहुत आगे निकल चुकी है, और मेरा एक पाव तो कब्र मे ही है। अब मैं, सबको नही, केवल उनको सबोधित कर रहा हू, जिन्होंने मुझे मृत्युदण्ड दिया है और मुझे उनसे एक और ही बात

प्रार्थना के बारे में बोलकर किया था, लेकिन ऐसी कोई बात नहीं। मैं केवल इसलिए बोलता हूं कि मुझे पूरा विश्वास है कि मैंने कभी भी जान-बूझकर किसी को हानि नहीं पहुंचाई, हालांकि मैं आपको इस बात का विश्वास नहीं दिला सका। मेरे पास समय थोड़ा था। यदि अथेन्स में भी अन्य नगरों की भांति यह विधान होता कि मृत्युदण्ड का निर्णय केवल एक ही दिन में नहीं होना चाहिए, तो मेरा ख्याल है कि मैं आप लोगों को अपनी बातों का विश्वास दिला ही देता। मैं एक ही चुटकी में बड़े-बड़े अभियोगों का खण्डन नहीं कर सकता, मुझे पूरा विश्वास है कि मैंने कभी भी किसी को हानि नहीं पहुंचाई। अतः मैं निश्चय ही स्वयं को भी हानि नहीं पहुंचाऊंगा। मैं स्वयं को किसी बुराई के योग्य नहीं मानता और न अपने लिए किसी दण्ड का ही प्रस्ताव रखूंगा। भला मैं रखूं भी क्या? इसलिए कि मैं मलेतस द्वारा प्रस्तावित मृत्युदण्ड से डरता हूं? जबकि मुझे यह मालूम ही नहीं कि मृत्यु अच्छी चीज है या कि बुरी, तो मैं ऐसे दण्ड का प्रस्ताव क्यों रखूं, जो कि निश्चय ही बुरा हो? क्या स्वयं को कारावास में रखे जाने का सुझाव दूं? परन्तु मैं कारावास में क्यों रहूं और वर्ष के लिए नियुक्त न्यायाधीशों तथा 'एकादश' की गुलामी क्या करूं? यह भी हो सकता है कि मैं जुर्माने का दण्ड स्वीकार करूं और इसके चुकाये जाने तक जेल में पड़ा रहूं। परन्तु फिर वही आपत्ति, मुझे तो जेल में ही पड़े रहना होगा, क्योंकि जुर्माना देने के लिए मेरे पास पैसा ही नहीं, तो दे ही क्या सकता हूं? और यदि मैं देश-निकाला कहूं (आप भी शायद यही दण्ड देने का निर्णय करेंगे), तो निश्चय ही जीवन के अनुराग ने मुझे अन्धा बनाया होगा, जो मैं इतना नासमझ बनूं कि पराये व्यक्तियों द्वारा अपनाये जाने की आशा करूं, जबकि आप मेरे ही नगर के निवासी होकर मेरे शब्दों और मेरी वार्ता को सहन नहीं कर सकते और इनको इतना दुखदायी तथा घिनौना मानते हैं कि अब आप लोग मेरी एक भी नहीं सुनना चाहते। नहीं, अथेनियो! बिलकुल नहीं, यह सम्भव नहीं हो सकता। मेरा जीवन भी क्या जीवन होगा, जो मैं इस आयु पर आकर एक नगर से दूसरे में घूमता-भटकता फिरूं, बार-बार अपने स्थान को बदलता फिरूं और प्रत्येक बार बाहर धकेला जाऊं। मुझे विश्वास है कि जहां कहीं भी मैं जाऊंगा, वहां भी यहां की भांति नवयुवक मुझे घेर लेंगे और यदि मैं उनको भगाऊंगा, तो उनके बुजुर्ग उनकी प्रार्थना पर मुझे निकाल बाहर करेंगे। यदि मैं उनमें सम्पर्क बढ़ाता हूं, तो उनके पिता तथा मित्र उनकी भलाई को ध्यान में

रखते हुए मुझे निकाल बाहर करेंगे।

कोई पूछेगा—हा, सुकरात ! पर क्या तुम चुप नही रह सकते? क्योंकि फिर तो तुम विदेश मे किसी भी नगर मे जा सकते हो और लोग तुम्हारे बीच हस्तक्षेप नहीं करेंगे। देखिए, मुझे आपको इस प्रश्न का उत्तर समझाने मे बहुत ही कठिनाई का अनुभव हो रहा है। यदि मैं आपसे यह कहू कि आपकी राय के अनुसार चलना ईश्वर की आज्ञा को भग करना होगा और इसीलिए मैं चुप नही रह सकता, तो आप लोग विश्वास नही करेंगे कि मैं सत्य बोल रहा हू। यदि मैं यह कहू कि प्रतिदिन गुणों और उन दूसरी बातों की (जिनके बारे मे आप मुझे स्वय अपना तथा दूसरो का परीक्षण करते हुए देखते हैं) वार्ता छेडने मे ही मनुष्य की अधिकतम भलाई है और यह कि परीक्षणरहित जीवन तो जीने योग्य ही नही, तो आपके मुझ पर विश्वास करने की सभावना और भी कम है फिर भी जो कुछ मैं कहता हू सत्य है। यद्यपि आप लोगो को इस पर विश्वास दिलाना मेरे वश की बात नही। इसके अतिरिक्त, मैं कभी भी यह सोचने का अभ्यस्त नही रहा कि मैं किसी प्रकार की हानि उठाने के योग्य हू। यदि मेरे पास धन होता, तो मैं अपने अपराध की दर अपनी पूजी के अनुसार लगा देता और मेरी स्थिति इतनी खराब न होती, परन्तु मेरे पास कुछ भी नहीं है इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करूगा कि मेरा जुर्माना मेरे साधनो के समानुपात रखा जाए। हा, सम्भवत मैं एक मीना दे सकता हू। इसलिए मैं इतने ही जुर्माने का सुझाव रखता हू। यहा उपस्थित मेरे मित्र प्लेटो, क्राइतो, क्राइतोबुलस तथा अपोलोडोरस मुझे तीस मीने कहने का आदेश देते हैं और वे इस रकम के लिए जामिन रहेंगे। अत तीस मीने का दण्ड निर्धारित किया जाए, जिस रकम के लिए ये, मेरे मित्र यथेष्ट जमानत दे सकेंगे।

हे एथेंसवासियो ! आप अधिक समय तक नगर के आलोचकों द्वारा की गई बदनामी से बच नही सकते। वे यही कहेंगे कि आपने सुकरात, एक ज्ञानी पुरुष को मारा। हालाकि मैं ज्ञानी नहीं हू, फिर भी जब वे आपको धिक्कारेंगे तो वे मुझे ज्ञानवान् ही कहेंगे। यदि आप कुछ समय और प्रतीक्षा करते, तो आपकी इच्छा प्राकृतिक क्रम के अनुसार ही पूर्ण हो जाती, क्योंकि जैसा आप देख ही रहे है, मेरी आयु बहुत आगे निकल चुकी है, और मेरा एक पाव तो कब्र मे ही है। अब मैं, सबको नही, केवल उनको सबोधित कर रहा हू, जिन्होने मुझे मृत्युदण्ड दिया है और मुझे उनसे एक और ही बात

कहनी है। आपका विचार है कि मुझे इसलिए अपराधी ठहराया गया कि मैंने वैसे शब्दों का प्रयोग नहीं किया, जो मुझे मुक्ति दिलवा सकते थे, अर्थात् मैंने प्रत्येक प्रयत्न को नहीं आजमाया और प्रत्येक बात को कहना उचित नहीं समझा। ऐसी बात नहीं। शब्दों की कमी के कारण मुझे अपराधी नहीं ठहराया गया, निश्चय ही नहीं, बल्कि इसलिए ठहराया गया है क्योंकि मुझमें वह साहस या धृष्टता या इच्छा न थी, जो मैं आपकी इच्छानुसार आपसे प्रार्थना करता या रोते-रोते, बिलखते-बिलखते, शोकातुर होकर ऐसी बातें करता ऐसे बहुत-स तमाशे रचता, जो आप दूसरों से सुनने के अभ्यस्त हो चुके हैं और जो मेरे विचारानुसार मुझे शोभा नहीं देते। मैंने उस समय यही सोचा था कि खतरे के समय मुझे कोई साधारण या निकृष्ट कार्य नहीं करना चाहिए। अब भी मैं अपनी सफाई प्रस्तुत करने के ढंग पर पश्चात्ताप नहीं कर रहा हूं। आपकी इच्छानुसार बोलकर जीवित रहने की अपेक्षा मैं अपने ढंग से बोलकर मरना ही उचित समझता हूं। युद्ध में या कानून के सामने मुझे अथवा किसी अन्य व्यक्ति को मृत्यु से बचने की हर मुमकिन कोशिश नहीं करनी चाहिए। प्राय रणक्षेत्र में यदि कोई अपने शस्त्र छोड़कर पीछा करने वालों के सामने घुटने टेके, तो निश्चय ही वह मृत्यु से बच जाएगा। दूसरे खतरों में भी जान बचाने के अनेक साधन होते हैं। केवल खतरे में फंसे हुए उस व्यक्ति को कुछ कहने अथवा करने के लिए तैयार रहना चाहिए। हे मित्रो ! कठिनाई मृत्यु को टालने की नहीं बल्कि भ्रष्टाचार की है, क्योंकि उसका वेग मृत्यु से कहीं अधिक है। मैं बूढ़ा हूं और धीरे-धीरे चलता हूं इसलिए मन्द वेग वाला हूं। मृत्यु ने मुझे पकड़ लिया है। उधर मेरे अभियोक्ता बहुत ही वेगवान और चलते पुर्जे हैं। उन्हें उनसे भी अधिक वेग वाले शत्रु अर्थात् भ्रष्टाचार ने पकड़ लिया है। अतः अब मैं आपके द्वारा अपराधी ठहराए जाने पर, मृत्युदण्ड भुगतने जा रहा हूं, उधर वे भी 'सत्य' द्वारा अपराधी ठहराये जाने पर अपने-अपने मार्ग से दुष्टता तथा अपकार के लिए दण्ड भुगतने जाते हैं। मुझे अपना दण्ड भुगतना चाहिए और उन्हें अपना। मेरे विचारानुसार इन बातों को दैव निर्दिष्ट ही मानना चाहिए अतः जो हो रहा है वह ठीक ही है।

मुझे दण्ड देने वालो ! अब मैं आपके बारे में एक भविष्यवाणी करना चाहूंगा, क्योंकि अब मैं मरने वाला हूं और मरते समय मनुष्य को भविष्यवाणी करने की दैवी शक्ति प्राप्त हो जाती है। ओ मेरे घातको ! मैं आपके सम्बन्ध में यह भविष्यवाणी करता हूं कि मेरी विदाई के तुरन्त

बाद निश्चय ही मुझे दिये गये दण्ड से कही अधिक भारी दण्ड आपको भुगतना पड़ेगा। आपने मुझे मारा, क्योंकि आप अपने अभियोक्ता से बचकर अपने-अपने जीवनो का विवरण नहीं देना चाहते, परन्तु जैसा आपका विचार है, वैसा नहीं होगा, उसके बिलकुल विपरीत ही होगा, मैं कहे देता हू कि भविष्य मे आपके आज से कही अधिक अभियोक्ता होंगे—वे अभियोक्ता, जिनको कि अभी तक मैंने नियन्त्रण मे रखा है। वे नवयुवक हैं इसलिए वे आपके साथ और भी अधिक अविवेकपूर्ण व्यवहार करेंगे और आपको उनके कारण और भी अधिक कष्ट मिलेगा। यदि आप यह समझते हैं कि निरपराध मनुष्य को मारकर आप अपने पापी जीवन को दूसरो के द्वारा कलंकित होने से बचा सकते हैं, तो यह आपकी भूल है। इस ढग से बचकर निकलना न तो सम्भव ही है और न सम्मानजनक ही। सबसे सरल तथा उत्तम मार्ग, लोगो को असमर्थ न बनाकर स्वय अपना सुधार करते रहना ही है। यही है वह भविष्यवाणी, जो मैं अपनी विदाई से पूर्व उन न्यायाधीशो को कह सुनाता हू, जिन्होंने मुझे दण्ड दिया है।

हे मित्रो! मरणस्थल के लिए प्रस्थान करने से पूर्व मैं आप लोगो से भी, जिन्होंने मुझे दोषमुक्त माना, इस घटना के बारे मे इस बीच कुछ कहना चाहूगा—जितनी देर कि न्यायाधीश व्यस्त रहेगे। तो फिर जरा ठहरिये! जब तक समय है, हम आपस मे कुछ बातें तो करें। आप मेरे मित्र हैं और मैं अपने साथ गुजरी घटना का तात्पर्य आपको समझाना चाहता हू। हे मेरे न्यायाधीशो! क्योंकि मैं आपको ही वास्तविक न्यायाधीश मानता हू अत मैं आपको एक विचित्र सयोग की बात सुनाऊगा। आज तक वह दैवीगुण, जिसका स्रोत मेरी आन्तरिक देववाणी* है, मुझे निरन्तर नियमित रूप से मामूली बातों पर भी, अर्थात् जब कभी मैं किसी बात पर जरा-सी भी गलती करने को होता, मेरा विरोध करता आया था। अब जैसा कि आप देख ही रहे है, मुझ पर वह कठिनाई आ पड़ी है, जिसको साधारणत और वैसे भी अन्तिम तथा निकृष्टतम विपदा माना जाता है, परन्तु उस देववाणी ने आज विरोध का तनिक भी सकेत न दिया। न उस समय, जब मैंने प्रात काल घर से प्रस्थान किया, न उस समय, जब मैं किसी बात पर कुछ कहने को उद्यत होता था हालाकि मुझे कई बार इसने भाषणों के बीच मे रोका है, परन्तु इस बार इस मुकदमे के सम्बन्ध मे मेरे कुछ बोलने पर अथवा कुछ करने पर इस देववाणी ने मेरा तनिक भी विरोध नही किया। इस मूकता की व्याख्या मेरे विचारानुसार जो है, मैं आपको बताऊगा। यह एक सकेत है कि जो कुछ मेरे साथ बीता

है, अच्छा ही हुआ है और यह कि हममे से वे लोग जो मृत्यु को विपदा मानते हैं, गलती पर हैं। यदि भलाई का पथ छोड़कर मैं बुराई को अपनाता होता, तो अवश्य ही यह सकेत अभ्यास के अनुकूल मेरा विरोध करता।

इसलिए, जरा दूसरे ढग से भी इस प्रश्न पर विचार करें। हम देखेंगे कि मृत्यु को अच्छा मानने की आशा का समवत आधार है, क्योकि दो ही तो सम्भावनाए हैं। मृत्यु या तो शून्यता और पूर्णअचेतन की स्थिति है या जैसा कि लोग कहते हैं, मृत्यु के साथ-साथ कुछ परिवर्तन आते हैं और आत्मा इस ससार से परलोक को प्रस्थान करती है। अब देखिए, यदि आप मानते हैं कि मृत्यु मे चेतना तनिक भी नहीं रहती और यह उस निद्रा के समान है, जिसमे सोनेवाले को स्वप्न तक नहीं छेडते, अवश्य ही मृत्यु एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। यदि कोई व्यक्ति ऐसी रात चुने, जबकि उसकी नीद स्वप्नो से भी मुक्त रही हो और फिर वह उस रात के साथ अपने जीवन भर की रातो और दिनों की तुलना करे और फिर उससे यह पूछा जाये कि जीवन मे उसने कितनी रातें और कितने दिन उस रात से अधिक अच्छी तरह और प्रसन्नतापूर्वक काटे हैं, तो मेरे विचारानुसार कोई भी व्यक्ति, केवल साधारण व्यक्ति ही नही बल्कि एक महान् राजा भी, तुलनात्मक दृष्टि से उस रात जैसी अनेक रातें या दिन नहीं गिना सकता। तो हां, यदि मृत्यु की यही प्रकृति हो, तो मैं कहूगा कि मरना लाभप्रद ही है क्योकि उस दशा मे अनन्त केवल एक ही रात्रि मे समा जाता है, परन्तु यदि मृत्यु उस दूसरे स्थान की ओर ले जानेवाली यात्रा हो, जहा, जैसा कि लोग कहते हैं, सभी मरे हुए रहते हैं तो हे मेरे मित्रो और न्यायाधीशो! इससे बढ़कर सुखद भला और क्या होगा? यदि सचमुच जीव के परलोक पहुचने पर वह इस ससार के न्यायाधीशों से मुक्त हो जाता हो और सच्चे न्यायाधीशो को पाता हो, जो कि परलोक मे न्याय करते बताए जाते हैं, जैसे मिनोस और रहादामान्थस और अइएकस और त्रिपतोलेमस और अन्य देवपुत्र जो कि अपने जीवनकाल मे सत्पथ पर चले थे, तो ऐसी यात्रा करने योग्य है। ओरफेअस", मुसाएअस", हेसिओद" तथा होमर" के साथ बातचीत करने के लिए आदमी क्या कुछ देने को तैयार नहीं? यदि यह सत्य हो, तो मैं बार-बार और अनेक बार मरना चाहूगा। मैं स्वय भी पालामेदेसा, तेलामोन के पुत्र अजक्स और अन्य प्राचीन नरदत्रो से, जिन्होंने कि अन्यायपूर्ण दण्ड के कारण मृत्यु पाई, मिलने और वार्तालाप करने में एक अद्भुत रुचि लूगा। मेरे विचारानुसार उनके दुखो की अपने दुखों के साथ तुलना करने मे बड़ा ही आनन्द आयेगा। सबसे बड़ी बात

तो यह है कि मैं वहां परलोक मे भी वास्तविक और झूठे ज्ञान के भेद की खोज को जारी रख सकूगा। ठीक वैसे ही जैसे कि यहां इस ससार मे मैं करता आया हू और यह पता लगाऊगा कि ज्ञानी कौन है और कौन ज्ञानी न होते हुए भी ज्ञानी होने का दम्भ करता है। हे न्यायाधीशो ! ट्राय के उस महान् अभियान के नेता या ओद्युसेअस" अथवा सिस्यूफ़स" अथवा अन्य अगणित नर तथा नारियो को परखने का अवसर पाने के लिए आदमी क्या कुछ देने को तैयार न होगा ? उनके साथ बातचीत करने मे और उनसे प्रश्न पूछने मे अपार आनन्द आयेगा। परलोक मे वे किसी भी व्यक्ति को प्रश्न पूछने के लिए मारते नहीं हैं, कदापि नहीं, क्योकि यदि कानो सुनी सत्य हो तो वे हमसे अधिक प्रसन्न रहने के अतिरिक्त अमर भी तो हैं।

इसलिए हे न्यायाधीशो ! मृत्यु के बारे मे आप अपने चित्त को प्रसन्न रखिएगा और इस बात को निश्चय ही सत्य मानिएगा कि एक भले व्यक्ति का न अपने जीवन-काल मे और न मृत्यु के बाद ही कुछ बिगडता है। देवता उसको और उसके आश्रितो को कभी भी नहीं भूलते। मेरी भावी मृत्यु एक आकस्मिक घटना नहीं है, मुझे साफ दिखाई देता है कि अब वह समय आ गया है, जबकि मेरे लिए मरना और कष्ट से छुटकारा पाना ही अच्छा है। इसीलिए मेरी देववाणी ने भी कोई सकेत न दिया। यही कारण है कि मैं न अपने अभियोक्ताओं मे नाराज हू और न दण्ड देने वालों से। उन्होने मेरा कुछ बिगाडा नहीं, हालाकि वे मेरा भला भी नही करना चाहते थे, जिस कारण मैं उनको कुछ-कुछ दोषी ठहराता हू।

फिर भी मैं उनकी एक कृपा का याचक हू। हे मेरे मित्रो ! जब मेरे लडके बडे हो जायें और फिर वे सद्गुणो की अपेक्षा धन अथवा किसी और वस्तु की चिन्ता करते दिखाई दें, तो आप कृपया उनको दण्ड दीजिएगा। मैं चाहूगा कि आप उनको वैसे ही कष्ट दें, जैसे कि मैं आपको देता रहा हू। यदि वे वास्तव मे तुच्छ होते हुए भी अपने-आप को कुछ का कुछ बताने का दिखावा करें, तो आप उनको झिडकिएगा, जैसे कि मैं आपको झिडकता रहा हू। यदि आप ऐसा करेंगे, तो मैं और मेरे पुत्र, यह स्वीकार करेंगे कि हम आपमे उचित न्याय मिला।

बिदा होने का अवसर आया है। हम अपना अपना मार्ग लेंगे—मैं मृत्यु का और आप जीवन का। फायदे मे कौन रहा ! ईश्वर ही जाने।

क्राइतो

सुकरात के मुकदमे और मृत्यु के बीच एक बार उसका मित्र क्राइतो उसे जेल से भगा ले जाने की एक योजना बनाकर आता है। क्राइतो सुकरात से कहता है, "तुम्हें भगा ले जाने की सारी तैयारी हो चुकी है। तुम्हें मरना नहीं चाहिए, क्योंकि वैसा करने से तुम अपने मित्रों, परिवार तथा स्वयं अपने-आप को हानि पहुचाओगे।" सुकरात इस बात को नहीं मानता। वह न्यायालय में स्वयं व्यक्त किए शब्दों के विपरीत आचरण करके ढोंगी नहीं कहलाना चाहता। वह अन्थेस के कानून का खण्डन नहीं कर सकता। चाहे उस पर लगाए आरोप झूठे हों क्यों न हों। कानून का मानवीकरण करके उसके साथ एक काल्पनिक संवाद में वह सिद्ध करता है कि एक सच्चे नागरिक को किसी भी स्थिति में कानून को नहीं तोड़ना चाहिए।

पात्र : सुकरात तथा क्राइतो
दृश्य : सुकरात का कारावास

सुकरात : तुम इस समय कैसे आए क्राइतो ! अभी तो बहुत सवेरा होगा ?

क्राइतो : हां, है तो।

सु० : अभी ठीक क्या बजा होगा ?

क्रा० : पौ फट रही है।

सु० : आश्चर्य है कि जेलर ने तुम्हें अन्दर आने दिया।

क्रा० : वह मुझे जानता है, क्योंकि मैं बहुधा यहां आया करता हू और मैंने उस पर एक अहसान भी किया है।

सु० : क्या तुम अभी-अभी आये हो ?

क्रा० . कैसा स्वप्न ?

सु० मेरे सम्मुख भड़कीले कपड़ो में सुसज्जित एक रूपवती सुन्दरी प्रकट हुई। उसने मुझे आवाज दी और कहा, "तुम उपजाऊ फथिआ के लिए तीसरे दिन प्रस्थान करोगे।"

क्रा० कितना निराला स्वप्न है !

सु० इसका फल क्या हो सकता है, इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं।

क्रा० हां फल तो बिलकुल ही स्पष्ट है परन्तु हे प्रिय सुकरात, मैं एक बार फिर तुमसे विनय करता हूं। मेरी बात मान लो और यहां से भाग निकलो, क्योंकि यदि तुम मारे गए तो मैं न केवल एक अनुपम मित्र को ही खो बैठूंगा, अपितु मेरे माथ पर एक कलंक भी लगेगा। वे लोग जो हमें नहीं जानते हैं, यही समझेंगे कि यह क्राइतो की ही लापरवाही का फल है। यदि वह चाहता तो पैसा खर्च करके सुकरात को बचा सकता था। इससे ज्यादा लज्जा की बात मेरे लिए और क्या हो सकती है कि मुझे उन में से गिना जाए जो अपने पैसे को एक मित्र के जीवन से ज्यादा मूल्यवान् समझते हैं। कौन विश्वास करेगा कि तुम्हें भगा ले जाने के लिए मैं बिलकुल तैयार बैठा था, परन्तु तुम ही न माने।

सु० परन्तु, क्राइतो जनता क्या कहती है और क्या नहीं, हमें उन बातों से क्या लेना देना ? केवल भद्रजनों की राय ही ध्यान देने योग्य है और मुझे पूरा विश्वास है कि वे हमारे बीच हुई बातों को ठीक ऐसी की-ऐसी ही मान लेंगे।

क्रा० परन्तु सुकरात, हम तो लोगों की राय का पूर्णावहेलन न करना चाहिए, क्योंकि जो कुछ आए दिन हो रहा है वह इस बात का साक्षी है कि जो उनकी आंखों से गिरता है उनके कटुतम प्रहार का पात्र भी बन सकता है।

सु० काश ! ऐसा ही होता। लोग यदि बुरे से बुरा काम करने में सफल होते, तो वे अच्छे से अच्छा काम भी कर पाते और यह कितनी अच्छी बात होती, परन्तु सत्य तो यह है कि वास्तव में लोग न किसी का भला कर सकते हैं और न बुरा ही। उनका प्रत्येक काम संयोगवश हो जाता है।

क्रा० भला मैं तुम्हारे साथ क्या तर्क करूं ? परन्तु एक कृपा करो। यह तो बताओ कि तुम्हारे इस रवैये का कारण कहीं मैं और तुम्हारे अन्य मित्र ही तो नहीं है ? क्या तुम्हारे मन में यह शंका तो नहीं है कि यदि तुम

भाग निकले, तो कहीं हमें गुप्तचरों से न उलझना पड़े और परिणामस्वरूप कहीं हमें अपनी सम्पत्ति आंशिक या सम्पूर्ण खोनी न पड़ जाए, या कहीं और भी ज्यादा गम्भीर विपत्ति का सामना न करना पड़े? यदि तुम केवल हमारे कारण डरते हो, तो फिर बिलकुल निश्चिन्त हो जाओ, क्योंकि तुम्हें बचाने के लिए हमें इस प्रकार का बल्कि इससे भी गम्भीर खतरा मोल लेना चाहिए। इसलिए बातें मान लो और मेरे कहने पर चलो।

सु० हां, क्रायतो, डर यही एक नहीं, अनेक हैं।

क्रा० : घबराओ नहीं। ऐसे भी कुछ व्यक्ति हैं, जो थोड़ी सी कीमत पर तुमको जेल से निकालने के लिए तैयार हैं। रही बात गुप्तचरों की, उनकी मांगें कोई लम्बी-चौड़ी नहीं। थोड़े-से ही पैसे उनको सन्तुष्ट कर देंगे। मेरे साधन, जो निस्सन्देह विशाल हैं, तुम्हारी सेवा में प्रस्तुत हैं। यदि तुम मेरी सारी सम्पत्ति खर्च करने से हिचकिचाते हो, तो कुछ विदेशी अपनी पूंजी तुम्हारे हाथों पर धरने को तैयार हैं। उनमें से एक थेब्स-वासी सिम्मिअस केवल तुम्हारे लिए एक बड़ी धनराशि अपने साथ लाई है। सेबेस तथा और भी बहुत सारे लोग तुमको यहां से भागने में सहायता करने के लिए अपना अपना धन खर्च करने को तैयार बैठे हैं। इसलिए तुम उस शंका के कारण भागने से संकोच न करो। तुम्हारी वह शंका भी निराधार है जो कि तुमने अदालत में प्रकट की थी कि किसी दूसरे स्थान पर तुम अपने आप को सम्हाल न सकोगे। केवल अथेन्स में ही नहीं, तुम जहां भी जाओगे, लोग तुम्हारा सम्मान करेंगे। थेसाली में मेरे कुछ मित्र रहते हैं। यदि तुम चाहो तो उनके पास जाकर बेखटके रह सकते हो। वे तुम्हारा सम्मान करेंगे और रक्षा भी और हां, दूसरी बात सुकरात, यह भी है कि जब तुम्हारी जान बचाई जा सकती है, तो तुम्हें अपने जीवन से खेलने का कोई नैतिक अधिकार नहीं। ऐसा करके तुम अपना अस्तित्व उन शत्रुओं को सौंप रहे हो, जो शीघ्रातिशीघ्र तुम्हें नष्ट कर देना चाहते हैं। यहां यह कहना भी उचित होगा कि तुम अपने बच्चों से धोखा कर रहे हो। बजाय इसके कि तुम उनको पालो-पोसो और शिक्षित बनाओ, तुम उन्हें छोड़कर जाने की सोच रहे हो। परिणामस्वरूप उनको अनाथों का-सा जीवन व्यतीत करना होगा और यदि वे सकुशल रहे, फिर भी तुम्हें धिक्कार के सिवा और मिल ही क्या सकता है? जो व्यक्ति संतान को अन्त तक पाल-पोस कर शिक्षा देने को तैयार नहीं, उसे सन्तान उत्पन्न करने का अधिकार भी क्या है? परन्तु मुझे ऐसा लगता है कि तुम कर्तव्य के पुण्य और सम्मानजनक मार्ग को छोड़कर सहजगामी बन रहे हो और तुम जैसे

सत्कर्म मे निष्ठा रखनेवालों को यह शोभा नहीं देता। सच मानो, यह सोचकर कि इन सारी बातों का कारण हमारी कायरता ही मानी जाएगी, मुझे तुम्हारे अलावा अपने समान तुम्हारे सभी मित्रों के प्रति भी ग्लानि का अनुभव होता है। हमारी चलती तो यह मुकद्दमा ही न चलता। यदि चलता भी तो इसका स्वरूप कुछ और ही होता। उस पर अब यह अन्तिम घटना और यह भीषण मूर्खता केवल हमारी ही लापरवाही और कायरता के फलस्वरूप होती दिखाई देगी। ऐसा लगेगा कि हम किसी काम के नही। नही तो क्या हम लोग तुमको बचा न लेते ? तुम स्वय भी अपने-आप को बचा सकते थे क्योकि साधनो की कोई कमी नही होती। इस प्रकार सुकरात, तुम्हारी मृत्यु का परिणाम तुम्हारे और हम सभी के लिए बेहद दुखद और उपहासास्पद होगा। सोच लो सुकरात, और दृढ़ सकल्प करो। अब तो सोच-विचार का भी समय नही। अपने परिणाम को निश्चित ही समझो। एक ही रास्ता है, जिसको आज की रात ही अपनाना होगा और यदि आज की रात चूके, तो आगे कुछ भी कर पाना सम्भव न होगा और न बुद्धिमानी ही। इसलिए मेरी विनती को न ठुकराओ और मेरे कहने पर चलो।

सु० : प्रिय क्राइतो, तुम्हारा उत्साह यदि उचित कर्म के लिए हो, तो अवश्य ही मूल्यवान है, परन्तु यदि इसमे बुराई लेशमात्र भी हो [illegible] मात्रा के अनुपात मे ही वह उत्साह [illegible]
विचार [illegible]
ऐसा [illegible]
और [illegible] आदेश मानना होगा। इधर यह आदेश मनन [illegible] द्वारा होता रहा है की कसोटी पर खरा उतरा और उधर मैंने उसे अपनाया, फिर यह कैसा भी क्यो न हो। दूसरी बात यह है कि मैं इस सकट कालीन स्थिति मे अपनी ही धारणा को ठुकरा नही सकता। मैं अब भी उन्ही आदर्शों का सम्मान करता हू, जिनका हमेशा से करता आया हू। या तो हमे कोई दूसरा उत्तम आदर्श मिले या मैं तुम्हारी बात अनसुनी करके अपने मन की करू, भले ही जन शक्ति हमे बच्चो की तरह जेल, जुर्माने, मृत्यु इत्यादि भूतो से डराए-धमकाए। रही हमारी वर्तमान समस्या। इससे निबटने का उत्तम उपाय क्या हो सकता है ? क्यो न मैं तुम्हारे प्रथम तर्क से ही आरम्भ करूं। अर्थात्, हमे जनता की राय को मान्यता देनी चाहिए। तो हां, सुनो ! हमारा अपना मत यह है कि किसी-किसी की राय का अवलोकन तो करना चाहिए, परन्तु हर एक का नही। [illegible], क्या मुझे दण्ड दिए जाने से पहले

इस मत को मान्यता देना ठीक था? और क्या जो मत कभी उत्तम था, अब बिलकुल निकृष्ट और निरर्थक सिद्ध हो चुका है? इन प्रश्नों का उत्तर मैं तुम्हारी सहायता से ही पा सकता हूं। तो हां, प्रश्न यों है क्या मेरी वर्तमान स्थिति में हमारे मत में कोई परिवर्तन होता दिखाई देता है? और क्या मुझे उस मत में विश्वास रखकर चलना चाहिए? मेरे विचारानुसार और भी अनेक सम्मानित व्यक्ति यह मानते हैं कि केवल किसी-किसी की ही राय मूल्यवान होती है सबकी नहीं। देखो, क्राइतो! तुम कल मरने तो नहीं जा रहे हो न। कम-से-कम ऐसा होने की कोई सम्भावना लेश-मात्र भी नहीं है। इस प्रकार तुम मेरी जैसी स्थिति के भ्रमात्मक अधकार से मुक्त और असम्बद्ध हो। अब तुम्हीं बताओ कि मेरा यह कथन कि केवल कुछ व्यक्तियों की राय तथा कुछ विशेष विचार ही ध्यान देने योग्य होते हैं, जबकि अन्य विचार और अन्य व्यक्तियों की राय बेकार, ठीक है कि नहीं? मैं पूछता हूं कि मेरा यह मत ठीक था कि नहीं?

क्रा० : बिलकुल ठीक था।

सु० : अच्छों का अवलोकन किया जाना चाहिए और बुरों का नहीं?

क्रा० : हां, ठीक है।

सु० : और बुद्धिमानों की राय अच्छी होती है, मूर्खों की बुरी?

क्रा० : हां।

सु० : और उस दूसरी बात के बारे में हमने क्या कहा था? यही न कि यदि कोई व्यायाम सीखने वाला हो, तो उसे हर व्यक्ति की राय का हर व्यक्ति द्वारा की गई प्रशंसा या निन्दा का अवलोकन करना चाहिए या केवल एक व्यक्ति की, अर्थात् अपने गुरु या चिकित्सक की, जो भी वह हो?

क्रा० : केवल एक व्यक्ति की।

सु० : और उसे उसी एक व्यक्ति की प्रशंसा से खुश होना चाहिए और उसी की आलोचना से घबराना भी चाहिए शेष की राय से नहीं।

क्रा० : ठीक है।

सु० : और उसे उसी विशेषज्ञ, उसी गुरु के आदेशानुसार अपना खान-पान रखना चाहिए, न कि शेष सारी जनता की सामूहिक राय के अनुसार।

क्रा० : तुम ठीक कह रहे हो।

सु० : और यदि वह उस एक गुरु की अवहेलना करते हुए उसकी बातों को ठुकराता है और अज्ञानी जनसाधारण की बातों को मानता है

तो उस शिष्य को पीडा का सामना करना पडेगा या नहीं ?

क्रा० : करना पडेगा ।

सु० : और उस अवज्ञाकारी शिष्य की पीडा कैसी होगी ! इस पीडा का उस पर क्या प्रभाव होगा !

क्रा० यह तो स्पष्ट ही है । उसका शरीर ही उस पीडा का शिकार होगा । शरीर ही पीडा से नष्ट होता है ।

सु० . बहुत ठीक । और क्या यही बात दूसरे मामलो के लिए भी लागू नहीं हो सकती, जिनका यहा अलग से विवरण देने की कोई आवश्य-कता नही ? क्या न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित, भले-बुरे से सम्बन्धित सभी प्रश्नो के लिए, जिन पर हम इस समय विचार कर रहे हैं, हमे सर्व-साधारण की राय मान लेनी चाहिए ? क्या उनसे डरना चाहिए या कि उस एक व्यक्ति की राय माननी चाहिए जोकि विषय की जानकारी रखता हो ? क्या हमे शेष सारे ससार से कही ज्यादा उसी से नही डरना चाहिए तथा उसी का सम्मान नही करना चाहिए ? और यदि हम उस व्यक्ति की कोई परवाह नहीं करते, तो क्या हममे निहित उस तत्व को जो न्याय से पनपता और अन्याय से भ्रष्ट होता है, हानि नही पहुचेगी ? क्या ऐसा करन से हम उन नष्ट नही करेंगे ? और क्या हममे इस प्रकार का कोई तत्त्व है ?

क्रा० . निरसन्देह है ।

सु० अब एक उदाहरण लो । यदि अज्ञानियो के निर्देशानुसार काम करने से हम उस तत्त्व को नष्ट कर बैठे, जो स्वास्थ्य से फलना-फूलता है और बीमारी से क्षतिग्रस्त होता है, तो क्या यह जीवन भी कोई जीवन होगा ? और जो नाश को प्राप्त हुआ वह शरीर ही तो होगा ?

क्रा० : हा, शरीर ही होगा ।

सु० : क्या हम दूषित और भ्रष्ट शरीर को लेकर जीवित रह सकते हैं ?

क्रा० बिलकुल नही ।

सु० : और क्या न्याय से पनपने वाले तथा अन्याय से भ्रष्ट होने वाले उस महत्त्वपूर्ण तत्त्व के नष्ट हो जाने के बाद यह जीवन कोई जीवन रहेगा ? क्या हम न्याय-अन्याय से सम्बन्धित उस तत्त्व को, भले ही मानवी शरीर में उसका कुछ भी रूप हो, शरीर से निकृष्ट मानते हैं ?

क्रा० . बिलकुल नही ।

सु० · तो क्या वह शरीर से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है ?

क्रा० वही ज्यादा।

सु० तो, हे मित्र ! हमे सर्वसाधारण की बातो पर ध्यान नहीं देना चाहिए। महत्त्व उसके मत का है जो न्याय और अन्याय मे अन्तर समझता हो। इस प्रकार, यह कहकर कि न्याय-अन्याय, भले-बुरे, महान और निकृष्ट के बारे मे हमे हर किसी की राय मान लेनी चाहिए, तुम एक भूल कर रहे हो। हा, यह बात और है कि 'बहुमत' चाहे तो हमे मार सकता है।

क्रा० हा सुकरात, ऐसा कहना तो स्वाभाविक ही है।

सु० और ठीक भी, फिर भी देखो, आश्चर्य की बात है कि अपना प्रथम तर्क वैसे-का-वैसा ही अटल है। क्या यही उस दूसरे तथ्य के बारे मे भी कहा जा सकता है कि केवल जीवन ही नही, बल्कि एक अच्छा जीवन ही विशेषत महत्त्वपूर्ण होता है ?

क्रा० हा, यह तथ्य भी अटल है।

सु० और एक अच्छा जीवन ही न्यायपूर्ण तथा सम्मानित होता है, यह भी ठीक है न ?

क्रा० हा, ठीक है।

सु० इन पूर्वोत्तर पदो को लेकर अब मैं इस प्रश्न का विवेचन करूगा कि मुझे एथेन्सवासियो की अनुमति के बिना ही यहा से भाग निकलने का प्रयत्न करना चाहिए कि नही। यदि भागने को ठीक पाता हू, तो अवश्य भागने का प्रयत्न करूगा। यदि नही तो, यही रहूगा। रही बात तुम्हारी अन्य हेतुओ की धन, चरित्र हानि और बच्चो को शिक्षा देने का कर्त्तव्य मेरे विचार से ये सारी बातें उस साधारण जनता के सिद्धान्तो मे आती हैं, जो अपना बस चलने पर किसी भी व्यक्ति को ठीक उसी प्रकार बिना किसी कारण के जीवन दान देने पर तुल जाती, जिस प्रकार वह उसको मृत्यु-दण्ड देने पर तुल जाती है। अब चूकि यह विवेचन अभी तक युक्ति-युक्त चलाआ रहा है, केवल एक ही प्रश्न का विश्लेषण करना शेष रह गया है। क्या यहा से भागना मेरे लिए ठीक होगा ? क्या ऐसा करने के लिए दूसरो की सहायता लेकर उनका ऋणी और कृतज्ञ बनना ठीक होगा ? यदि ऐसा करना ठीक न हो, तब मेरे यहा ठहरने से मृत्यु का सामना करना पडे या और किसी विपत्ति का तो मुझे उस विपत्ति को किसी गिनती में नहीं लाना चाहिए।

क्रा० मेरे विचार से सुकरात, तुम ठीक ही कह रहे हो। तो फिर अब क्या करें ?

सु० • चलो दोनो मिलकर इस प्रश्न का विवेचन करें। मेरे तर्कों का खण्डन करके यदि तुम मुझे सन्तुष्ट कर सके, तो ठीक है, नहीं तो चुप्पी साध लेना और मुझे अथेन्सवासियो की अनुमति के बिना भाग निकलने के लिए दूसरी बार न कहना। ऐसा करवाने के लिए तुम्हारे इन प्रयत्नो का महत्त्व मैं अच्छी तरह जानता हू परन्तु मुझे अपने व्यक्तिगत धारणा के विरुद्ध नही चलाया जा सकता। तो हा, मेरी मूल धारणा देखे लो और मेरे प्रश्नो का उत्तम से उत्तम उत्तर देने का प्रयास करो।

क्रा० करता हू।

सु० क्या यह ठीक है कि हमे कभी भी जानबूझकर कोई अनुचित कार्य नहीं करना चाहिए या यह कि किसी विशेष स्थिति में कर भी लेना चाहिए या जैसा कि मैं अभी बता रहा था कि अनुचित कार्य करना हर स्थिति मे सदा ही अपमानजनक और बुरा है ? क्या हम पहले से बनाई गई सब मान्यताओ को ठुकरा दें ? हम जीवन-भर एक दूसरे के साथ वाद-विवाद करते आए हैं केवल इसलिए कि इस उम्र पर पहुचकर हम अपने-आप को बच्चो से भी गया गुजरा पाए ? या कि बहुमत के बावजूद हर प्रकार के परिणामो को दृष्टि मे रखकर पहले कही गई बात की सच्चाई अर्थात् 'अन्याय हर स्थिति मे अन्यायी के लिए अनुचित और अपमानजनक होता है' का दृढतापूर्ण पक्ष लें ? कहो लें कि नही ?

क्रा० हां लेंगे।

सु० तो फिर हम कोई अनुचित कार्य नही करना चाहिए।

क्रा० बिल्कुल नहीं।

सु० हा, क्राइतो, अब बोलो, क्या हमे कोई बुरा कार्य करना चाहिए ?

क्रा० कदापि नही।

सु० और बहुसख्यकों की 'खून के बदले खून' वाली धारणा के बारे मे अब तुम्हारा क्या विचार है ? यह उचित है या अनुचित ?

क्रा० अनुचित।

सु० यही न कि किसी का बुरा करना या उसको दुख पहुचाना एक ही बात है ?

क्रा० बिलकुल ठीक है।

सु० तो चाहे किसी ने हमारा कितना भी अहित क्यो न किया हो हमे किसी भी दशा मे उससे बदला नहीं लेना चाहिए और न बुराई का

बदला बुराई से चुकाना चाहिए, परन्तु क्राइतो, तुम जरा इस बात की गहराई को टटोलो और बताओ कि सचमुच अपने मुह की कही को सत्य मानते हो ? क्योंकि जो कुछ हमने सिद्ध किया है, वह आज तक कभी भी बहुमत प्राप्त नही कर पाया और न कभी पा सकेगा। इस बात को मानने वाले और न मानने वाले, दोनों के चिन्तन का आधार बिलकुल ही भिन्न भिन्न है और इसी विभिन्नता के कारण वे एक-दूसरे से घृणा करने के सिवा और कर ही क्या सकते हैं ? इन बातो को ध्यान मे रखते हुए अब मुझे बताओ कि तुम मेरे मूल सिद्धान्त अर्थात् 'किसी भी स्थिति में किसी को हानि पहुचाना, बदला लेना, बुराई को बुराई से टालना ठीक नहीं', से सहमत हो और तुम इसको स्वीकार करते हो या नही ? और क्या यही बात हमारे वाद विवाद का पूर्वोत्तर पद होगा ? मैं सदा से इसी तथ्य को मानता आया हू और आगे भी मानता रहूगा। यदि तुम इसको अस्वीकार करते हो, तो अपना तर्क प्रस्तुत करो और हा, यदि तुम्हारे विचार वैसे-के वैसे हैं, तो मैं अगली सीढी चढता हू।

क्रा० 'हा, आगे चलो, मेरे विचार वैसे के-वैसे ही हैं।

सु० हा, तो लो मैं अगले विचार को प्रश्न के रूप मे प्रस्तुत करता हू। क्या मनुष्य को वही कदम उठाना चाहिए, जिसको वह उचित समझता हो ?

क्रा० उसको वही कदम उठाना चाहिए, जिसको वह उचित समझता हो।

सु० यदि यह ठीक है, तो इसका व्यावहारिक रूप क्या होगा ? क्या अथेन्सवासियो की इच्छा के विरुद्ध जेल से भाग निकलने पर मैं किसी का कुछ बिगाड़ता हू ? क्या ऐसा करके मैं उन बातो का खण्डन नही करता हू जिनका कि मेरे द्वारा कुछ भी नही बिगडना चाहिए ? भागने पर क्या मैं उन सिद्धान्तो को नहीं त्यागता हू, जिनको कि हमने न्यायपूर्ण माना है कहो क्या कहते हो ?

क्रा० कुछ समझ मे नही आता, मैं कुछ कह नही सकता।

सु० 'लो यो समझो। मान लो मैं किसी की अनुमति के बिना ही यहा से भागता हू (भले ही इस काम को किसी और नाम से पुकारो) और यहा का कानून तथा सरकार आकर मुझसे यह पूछती है, ' अरे सुकरात, यह तो बताओ कि तुम करना क्या चाहते हो ? क्या तुम अपने इस कर्म से अपनी क्षमता के अनुसार कानून और सरकार का तख्ता ही नही उलट रहे हो ? क्या ऐसा राज्य कभी टिक सकता है ? क्या ऐसे राज्य का तख्ता पलट नही

सकता, जिसमे न्यायोचित निर्णय को वहा के नागरिक उखाड़कर कुचल देते हो? इस प्रकार के प्रश्नो का क्या तो हमारे पास क्या उत्तर होगा? कोई भी व्यक्ति विशेष कर एक अच्छा कानून के पक्ष मे बहुत कुछ कह सकता है। कानून की सत्ता उसके निर्देशो के पालन पर ही आधारित है। उसकी उपेक्षा नही की जानी चाहिए। ऐसी बातो के उत्तर मे शायद हम यह कहें, "हा, परन्तु राज्य ने हमे हानि पहुचाई है और हमारे साथ अन्याय किया है।" मान लो कि मैं ऐसा ही उत्तर देता हू?

क्रा० ठीक है, फिर?

सु० फिर वही कानून उत्तर देगा, "सुकरात, क्या हमारे बीच यही समझौता था? क्या तुम्हे राज्य द्वारा दिए गए दण्ड का पालन नही करना चाहिए था?' और यदि ये शब्द सुनकर मैं किसी प्रकार का विस्मय प्रकट करू, तो वह कानून शायद यो कहेगा, 'सुकरात आखें फाड़-फाड़कर क्या देखते हो उत्तर दो, तुम तो प्रश्नोत्तर करने के आदी हो। यह तो बताओ कि तुम्हें हमसे ऐसी कौन सी शिकायत है जिसके आधार पर तुम्हारे हाथो हमारा और राज्य का नाश क्षम्य माना जाए? सर्वप्रथम हमने क्या तुम्हें जन्म नही दिया? हमारी सहायता से ही तुम्हारे माता पिता की शादी हुई और तुम उत्पन्न हुए। बताओ तुम्हे उन कानूनो पर कोई एतराज है, जो कि शादी को नियमित करते हैं?" मेरा उत्तर नही के सिवा और हो भी क्या सकता है? "जो बच्चे उत्पन्न होने के पश्चात् उसके पालन-पोषण और उसकी पढाई लिखाई को नियमित करते हैं, जिनके अधीन तुमने भी शिक्षा पाई, क्या शिक्षा-सम्बन्धी वे कानून उचित नही जिनके अनुसार तुम्हारा पिता तुम्हारे संगीत" और व्यायाम की शिक्षा देने पर बाध्य हुआ?" मेरा उत्तर तो 'हा' ही होगा। वह कहेगा "तो हा, यदि तुम्हारा जन्म, तुम्हारा पालन पोषण और तुम्हारी शिक्षा हमारे द्वारा ही हुई हैं तो क्या तुम इस बात से इन्कार कर सकते हो कि सर्वप्रथम तुम हमारी ही सन्तान हो, हमारे ही गुलाम हो, ठीक वैसे ही जैसे कि तुमसे पहले तुम्हारे माता-पिता थे? और यदि यह सत्य है, तो तुम हमारे साथ बराबरी नही कर सकते और तुम्हे हमारे साथ वैसा ही व्यवहार करने का कोई अधिकार नहीं, जैसा कि हम तुम्हारे साथ करते हैं। यदि तुम्हे अपने पिता या मालिक (यदि तुम्हारा कोई हो तो) के हाथो कोई हानि पहुचे या वे तुमको झिड़कें, मारें-पीटें, तो क्या तुम्हें बिलकुल वैसे ही उनसे बदला लेने का कोई अधिकार है? नहीं, तुम ऐसा नहीं कर सकते। इसी प्रकार यदि हम तुम्हें नष्ट करना उचित समझते हैं, तो क्या तुम्हें यह अधि-

कार है कि तुम जहा तक हो सके, बदले मे हमारा और अपने देश का विनाश करो ? अरे सद्गुणो के प्रचारक ! क्या तुम अपनी इस हरकत को उचित ठहराने का ढोंग रचोगे ? क्या तुम्हारे जैसा दार्शनिक यह समझने मे असफल रहा है कि हमारा देश हमारे माता पिता या किसी भी अन्य पूर्वज से ज्यादा मूल्यवान, बढ चढकर और कही ज्यादा पवित्र है ? क्या तुम यह नही समझ पाए कि देवताओ और बुद्धिमानो की दृष्टि मे स्वदेश का सम्मान बहुत ही ज्यादा होना चाहिए ? कि क्रोध के समय इसको शान्त करना चाहिए ? इसे माता पिता से कही ज्यादा समझकर तुम्हे सम्मानपूर्वक और नम्रतासहित इससे प्रार्थना करनी चाहिए। तुम्हें या तो इसे मनाकर अपने पक्ष मे मोड लेना चाहिए या इसकी आज्ञा का पालन करना चाहिए। जब देश तुम्हें दण्ड देता है, जेल मे ठूसकर या कोडे मारकर, तो तुम्हे इसको चुपचाप सहना चाहिए। यदि इसके लिए रणक्षेत्र मे घायल होना पडे या जान से हाथ धोना पडे तो उफ तक नही करनी चाहिए। एक नागरिक के रूप मे कोई अपने स्थान को न छोडे, न पीछे हटे और न किसी के सामने झुके, बल्कि जहा कही भी वह हो रणक्षेत्र मे, *अदालत मे या और कही, उसे अपने प्रदेश अथवा देश के नियमो के अनु*सार ही चलना चाहिए। ऐसा न करने से पहले उसे अपने देश का न्याय के प्रति दृष्टिकोण बदल देना होगा। वह माता पिता के साथ हिंसात्मक बर्ताव नही करता अत उसके लिए देश के स थ ऐसा बर्ताव करना कदापि उचित नही।" क्यो क्राइतो, इन बातो का हमारे पास क्या उत्तर है ? कानून का यह कथन ठीक है कि नहीं ?

क्रा० हा, तो ठीक ही तो है।

सु० : आगे चलकर यही कानून कहेगा, "हे सुकरात, सच पूछो तो तुम्हारे भागने के प्रयास से हमारा अहित होगा। हमने तुम्हें जन्म दिया, पाला पोसा, शिक्षा दी और तुम्हारे साथ साथ दूसरे सभी नागरिको को अपने पास उपलब्ध सभी अच्छी चीजो मे से हिस्सा दिया। हम अथेन्स-वासियों को दी जाने वाली छूटो के आधार पर इतना भी घोषित करते हैं कि यदि कोई नागरिक बालिग होने पर, अपने नगर के तौर-तरीको को देखकर, कानून को समझकर, हमे पसन्द न करे, तो वह अपनी इच्छानुसार अपनी सम्पत्ति लेकर कही भी जा सकता है। इनमें से कोई भी एक कानून उसको मना नहीं करेगा और न उसकी योजना मे कोई बाधा ही डालेगा। कोई भी व्यक्ति, जो हमे या इस नगर को पसन्द नहीं करता, जो किसी उपनिवेश या कही और निवास करना चाहता है, अपनी सम्पत्तिसहित

यहा से कूच कर सकता है; परन्तु जो व्यक्ति हमारे राज-काज तथा न्याय-पद्धति से भली भांति परिचित होते हुए भी यहीं निवास करता हो, वह अप्रत्यक्ष रूप से हमारे साथ यह प्रण करता है कि वह सदा हमारी आज्ञा का पालन करेगा जो हमारी आज्ञा का पालन नहीं करता, हमारे विचारानुसार उसकी भूल तिगुनी है। पहली यह, कि हमारी आज्ञा भग करके वह अपने जन्मदाता की आज्ञा भग करता है। दूसरी यह, कि वह अपने शिक्षक की आज्ञा को भग करता है। और तीसरी यह, कि वह स्वयं दिए गए वचन को भी भग करता है और हमारी आज्ञा को भग करके वह हमे यह भी नही दिखाता कि यह आज्ञा अन्यायपूर्ण है। हम इस विषमता को किसी पर लादते तो नही, बल्कि हम उस व्यक्ति के लिए दो रास्ते रख छोड़ते हैं। या वह हमारी आज्ञा का पालन करे या अपने दृष्टिकोण से हमे सन्तुष्ट करे। यह हमारी धारणा है। वह कोई भी रास्ता न अपनाये, तो हम क्या करें ?

"तो हां, सुकरात, यदि तुम अपने मन की करते हो तो उपर्युक्त सभी आरोप तुम पर लग जायेंगे और यह बात समस्त अथेन्स मे, विशेषकर तुम पर ही लागू होती है।" मान लो, अब मैं उनसे पूछता हू कि विशेषकर मुझ पर ही क्यो ? तो उनका उत्तर बहुत ही कठोर होगा, परन्तु उचित भी कि विशेषकर मैंने ही उस प्रण को शिरोधार्य किया है। उनका तर्क यो होगा, "हे सुकरात, यह तो प्रमाणित ही है कि तुम्हे यह नगर और हम कभी बुरे नही लगे। सभी अथेन्सवासियो मे से यदि कोई यहा निरन्तर रहता आया है, तो वह तुम्हारे सिवा और कोई नही। तुम इस नगर को कभी नही छोडते, इसलिए तुम्हे यह अवश्य ही बहुत प्यारा होगा। तभी तो खेलो को देखने के लिए भी तुम केवल एक बार नगर छोडकर इस्थमस के सिवा और कही भी नही गए। सैनिक सेवाओ को पूरा करने के अतिरिक्त तुम और कभी भी दूसरे स्थान पर नही गए और दूसरो की भांति तुमने कभी यात्रा भी नही की। दूसरे राज्यो और उनके कानूनो से परिचित होने के लिए तुम कभी उत्सुक न थे। तुम्हारा लगाव सदा ही हमसे और हमारे राज्य से रहा। हम सदा ही तुम्हारे विशेष कृपापात्र रहे और हमारे शासन से तुम सदैव सन्तुष्ट रहे, जिस बात का प्रमाण यह है कि तुमने इसी नगर मे अपने बच्चो को जन्म दिया। यदि तुम्हारी इच्छा होती तो मुकद्दमे के दौरान तुम देशनिकाला ही अपना दण्ड निर्धारित करवाते। उस समय यही शासन तुम्हे विदेश जाने देता, जो कि अब तुम्हे छोडने के लिए तैयार नहीं। परन्तु उस समय तो तुमने यही बतलाया कि तुम मृत्यु को देशनिकाले से

श्रेष्ठ समझते हो और तुम्हे मरने की कोई चिन्ता नही। अब क्या तुम इन्ही कोमल भावनाओ को भूल चुके हो ? तुम कानून की परवाह किए बिना ही उनको नष्ट किए जा रहे हो और वह भी एक निकृष्ट गुलाम की भाति अपने उन प्राणो और अनुबन्धो को तोडकर, जो तुमने एक नागरिक होने के नाते हमारे साथ किए थे। तुमने हमारे अधीन न केवल शाब्दिक, बल्कि व्यावहारिक ढग से भी कार्य करने का वचन दिया था। यह ठीक है कि नही ?" इस प्रश्न का हम क्या उत्तर देंगे क्राइतो ? क्या हमे अपना दोष स्वीकार नही कर लेना पडेगा ?

क्रा० और कर ही क्या सकते हैं सुकरात !

सु० और फिर वे क्या ऐसा नही कह सकते, "सुकरात, तुम उन शर्तों और वचनो को अब पूरे सत्तर वर्षों तक परखने के बाद तोड रहे हो, जो कि तुमने अपनी मर्जी से दिए थे। तुम्हारे सामने फैसला करने की कोई जल्दी या मजबूरी नही थी, न तुम किसी भ्रम मे थे। इन सत्तर वर्षों मे यदि तुम हमे अपनी रुचि का न पाते या हमारी शर्तें तुम्हे अनुचित दिखाई देती, तो तुम बिना किसी रुकावट के इस नगर को छोडकर जा सकते थे। तुम अपनी इच्छानुसार किसी दूसरे यूनानी देश अथवा विदेश को चले जाते या तुम लासेदाएमोन अथवा क्रीट ही चले जाते, क्योकि इन दोनो राज्यो की अच्छी शासन प्रणाली के कारण तुम प्राय इनकी प्रशसा करते आए [illegible] बिना [illegible] पयो से [illegible] अपा-हिज सभी इस जगह पर जितने टिके हुए हैं तुम उनसे किसी हालत मे कम नही टिके। परन्तु अब तुम अपने वचनो को भूलकर उन्हे भग किए जा रहे हो। सुकरात, ऐसा नही होना चाहिए। हमारी सुनो, और नगर से बाहर भागकर स्वय को उपहास का पात्र न बनाओ।

"जरा सोच लो, यदि तुम इस प्रकार की भूल करते हो, इस प्रकार का अपराध करते हो, तो तुम्हे या तुम्हारे मित्रो को क्या लाभ हो सकता है ? यह तो निश्चित है कि तुम्हारे मित्रो को देशनिकाला मिलेगा और साथ-ही साथ उनसे या तो नागरिकता के अधिकार छीने जायेंगे या उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली जाएगी। रही तुम्हारी बात, यदि तुम किसी भी पडोसी नगर-राज्य जैसे थेब्स अथवा मेगारा (जिन दोनो प्रदेशो की शासन प्रणाली सुव्यवस्थित है) मे चले जाते हो, तो तुम्हे वहा एक शत्रु ही माना जायेगा। वहा की सरकारें तुम्हारा विरोध करेंगी। वहा के सभी देशभक्त

नागरिक तुम्हे कानून तोड़ने वाले अपराधी की दृष्टि से देखेंगे और इस प्रकार तुम यही प्रमाणित करोगे कि यहा के न्यायाधीशों ने तुम्हें यदि अपराधी ठहराया तो वह ठीक ही था। वे यही समझेंगे कि जो व्यक्ति कानून भग कर सकता है, वह अज्ञानी जनता और नवयुवको की बुद्धि भी भ्रष्ट कर सकता है। तो क्या सुकरात, तुम गुणवान् व्यक्तियो तथा सुशासित नगरो से भाग निकलोगे ? क्या वह जीवन भी कोई जीवन होगा ? सुकरात, क्या तुम बेशर्मी से उनके पास जाकर उनसे नाता जोड़ोगे ? उनको तुम क्या समझाओगे ? यही न कि सत्कर्म, न्याय, संस्थाए और कानून ही मनुष्य की उत्तम सम्पत्ति हो सकती है ? क्या तुम्हें ऐसा कहना शोभा देगा ? नही, बिलकुल नही ! और यदि तुम सुशासित राज्यो को छोडकर क्राइतो के मित्रो के पास थेसली जैसे अव्यवस्थित तथा दुराचार-ग्रस्त राज्य मे चले जाते हो, तो वहा के लोग तुम्हारे जेल से भागने की बेहूदा घटनाओ से भरपूर कहानी को सुनकर आनन्द लेंगे। किस प्रकार तुमको बकरी के चमड़े मे लपेटा गया या किस प्रकार तुम्हारा वेश बदलकर अन्य भगोड़ों की भाति तुम्हारी काया पलट की गई, यह सब सुनकर वे खूब मजा लगे। लेकिन उनम से क्या एक भी एसा न होगा, जो तुम्हे यह याद दिलाए कि सुकरात, इस बूढ़ी अवस्था मे कुछ दिन और जिन्दा रहने की व्यर्थ लिप्सा मे आकर तुम्हे अपने पवित्र कानूनो को तोड़ने हुए शर्म नही आई ? हा, यदि तुम उनको प्रसन्न रखने मे सफल रहे, तो शायद कोई भी ऐसे प्रश्न न पूछे, परन्तु यदि कोई आपे से बाहर हो, तो तुम्हारी मिट्टी पलीद कर देगा। तुम वहा जीवित तो रहोगे, लेकिन कैसे ? सभी की चापलूसी करनी होगी, जीहुजूरी करनी होगी। और तुम्हारा धधा ? थेसली मे बैठकर खाना और पीना। जैसे तुमने भोजन के लिए ही विदेश अपनाया हो। और फिर न्याय तथा गुणो के बारे म तुम्हारी सद्भावनाओ का क्या होगा ? मान लिया कि तुम अपने बच्चो के लिए जीवित रहना चाहते हो तुम उन्हें पालना चाहते हो, शिक्षा देना चाहत हो, तो क्या उनको अपने साथ थसली लेकर उन्हें अथेन्स की नागरिकता से विच्छिन्न करोगे ? उनको तुमस यही वरदान मिलेगा क्या ? कही तुम्हारी यह धारणा तो नहीं कि तुम्हारे जीते-जी (भले ही तुम उनसे दूर क्यो न रहो) यहा पर उनकी देख रेख और लिखाई पढाई ज्यादा अच्छे ढग से होगी, क्योकि उस स्थिति म तुम्हारे मित्र उनका ध्यान रखेंगे ? कही तुम ऐसा तो नही सोचते कि तुम्हारे थेसली मे रहने से तुम्हारे मित्र उनका ध्यान रखेंगे और यदि तुम्हारी मृत्यु हो गई तो उनका ध्यान नही रखा जाएगा ? नहीं सुकरात, ऐसा नही

होगा। यदि तुम्हारे साथ मित्रता का दावा करने वालों में जरा भी मानवता हो, तो वे अवश्य ही किसी भी स्थिति में, तुम्हारे बच्चों का ध्यान रखेंगे।

"इसलिए सुकरात, तुम हमारी सुनो। हमारी, जिन्होंने कि तुम्हें जन्म दिया, पाला और पोसा है। न्याय को त्याग कर सन्तान और जीवन के मोह में न डूबो। सर्वप्रथम न्याय की सोचो, तभी परलोक में जाकर देवजनों के सम्मुख तुम क्षम्य दिखाई दोगे। क्राइटो के कहने पर चलने से न तुम, न तुम्हारा कोई सम्बन्धी इस संसार अथवा परलोक में ही ज्यादा सुखी, पवित्र या सत्पथ का यात्री बन सकता है। अभी तुम कानून का नहीं, मनुष्य का शिकार बनकर हमसे बिछुड़ रहे हो। तुम्हारा स्वरूप एक कुकर्मी का न होकर, एक निर्दोष, दुखी सज्जन का है, परन्तु यदि तुम बुराई के बदले बुराई करने और खून के बदले खून लेने पर तुल जाते हो, हमें दिए वचनों को तोड़ते हो और स्वयं को, अपने मित्रों को, अपने देश को और हम कानूनों को हानि पहुंचाते हो, तो हम तुम्हारे जीते-जी तुमसे नाराज रहेंगे, क्योंकि ये सभी वस्तुएं ऐसी हैं कि इनकी ओर तुम्हें आंख उठाकर भी नहीं देखना चाहिए। इसके अतिरिक्त हमारे दूसरे बन्धु अर्थात् परलोक के कानून तुम्हारी एक शत्रु की सी दुर्गति करेंगे, क्योंकि उनको मालूम ही होगा कि तुमने हमें नष्ट करने में कोई कसर बाकी न छोड़ी। इसलिए सुकरात, हमारी सुनो, क्राइटो की नहीं।"

प्रिय क्राइटो, यही वह आवाज है, जो कि एक रहस्यवादी साधक के कानों में सुनाई पड़ने वाली बांसुरी की तान के समान मेरे कानों में गूंज रही है। यह गुंजन ऐसा है कि मैं कोई दूसरी आवाज सुनने में बिलकुल असमर्थ हूं। मैं जानता हूं कि जो कुछ तुम फिर से कहोगे, बेकार ही होगा, फिर भी यदि तुम कुछ कहना चाहते हो तो कहो।

क्रा० . नहीं, सुकरात। कुछ नहीं।

सु० : तो फिर मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो, ताकि ईश्वर के निर्देशानुसार ही उसकी इच्छा पूरी करूं।

फएदो

यह सुकरात का अन्तिम सवाद है। वह कारावास म है और सूर्यास्त होने पर उसको विष पीना है। दिन भर अपन मित्रो के साथ आत्मा की अमरता पर विचार विमर्श करते हुए वह कहता है कि ससार मायावी है। हमारी ज्ञानेन्द्रिया हमे वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति मे बाधक बनती है। मनुष्य जन्म पाकर हमारा परम कर्तव्य दिव्य ज्ञान की प्राप्ति तथा आत्मा को माया के बन्धनो से मुक्त करना है। आत्मा अजर और अमर है। इन्ही मन्तव्यो को युक्ति युक्त तर्कों तथा उदाहरणो की सहायता से वह अपने मित्रो को समझाता है और यही विचार प्लेटो के द्वैतवाद की आधार शिला हैं।

सूर्यास्त होने पर सुकरात शान्तिपूर्वक विषपान करके अमर गति को प्राप्त हुआ।

पात्र सुकरात, क्राइतो, सिम्मिअस, सबेस, आपोलोदोरस तथा कारावास का कर्मचारी। (सवाद का वृत्तान्त फएदो फलिअस निवासी एखेक्रातेस को सुनाता है)

दृश्य सुकरात का कारावास।

स्थान · फलिअस, जहा फएदो एखेक्रातस को सुकरात की अन्तिम बाते सुनाता है।

एखेक्रातेस फएदो, क्या तुम उस दिन सुकरात के पास जल मे थे, जब कि उसने विष पिया ?

फएदो हा, मै वही था।

एखे मैं उसकी मृत्यु के बारे मे सुनना चाहता हू। अपने अन्तिम क्षणो मे उसने क्या कहा ? इतना तो हमे मालूम हुआ है कि वह विष पीने

से मर गया, परन्तु इसके अतिरिक्त किसीको कुछ भी मालूम नही, क्योंकि अब कोई भी फलिअसनिवासी अथेन्स नही जाता और बहुत समय से कोई अथेन्सवासी भी इस ओर नहीं आया। इसी कारण हमे सही सूचाना न मिल सकी।

फए० : क्या तुमने मुकदमे की कार्यवाही के बारे में कुछ नही सुना?

एखे० : हा, मुकदमे का वृत्तान्त तो हमने किसी से सुन लिया, परन्तु हम यह समझ न पाये कि दण्ड घोषित होने पर उसको तुरन्त न मारकर, एक लम्बे समय के बाद क्यो मारा गया? इसका कारण क्या था?

एफ० : वह तो संयोगवश ही हुआ। जिस दिन उसका मुकदमा चला उससे एक दिन पहले अथेन्सवासियों द्वारा देलोस भेजे जाने वाले जहाज की सेहराबन्दी हुई थी।

एखे० : कैसा जहाज?

फए० : अथेन्स की परम्परा के अनुसार थेसेअस[11] ने उन चौदह युवकों सहित इसी जहाज में क्रीट के लिए प्रस्थान किया था। वहां उसने अपने साथ उनको भी बचाया। कहा जाता है कि उस समय उन्होने अपोलो (देवता) को वचन दिया था कि यदि वे बच निकले तो वे प्रति वर्ष देलोस को एक धर्म प्रचारक मडल भेजा करेंगे और यह प्रथा अब भी चली आ रही है। देलोस तक आने-जाने की जलयात्रा का समस्त काल पवित्र माना जाता है। इस काल का आरम्भ उस दिन से माना जाता है, जब कि अपोलो के पादरी द्वारा उस जहाज का अभिषेक किया जाता है और इस काल मे अपराधियो को फांसी चढ़ाकर नगर को अपवित्र नही किया जाता। कभी-कभी विरुद्ध हवाए जहाज को रोकती हैं। ऐसी स्थिति मे आने-जाने मे बहुत ही समय लगता है। जैसा कि मैं कह रहा था जहाज का अभिषेक मुकदमा चलने से एक दिन पहले हुआ था यही कारण था कि सुकरात जेल मे पडा रहा और दण्ड घोषित होने के बहुत समय बाद तक उसको मारा न गया।

एखे० : फएदो, वह किस ढग से मरा? उस समय क्या कुछ कहा गया? क्या किया गया? उसके मित्रो मे से कौन-कौन उसके पास था? कहीं अधिकारियो ने उनके वहां रहने पर रोक तो नही लगाई जिससे मरते समय उसके पास कोई मित्र न रहा हो?

फए० : नहीं-नहीं उनमे से तो बहुत सारे उसके पास थे।

एखे० : यदि तुम्हें कोई काम न हो, तो कृपया जितनी भी बारीकी से तुमसे हो सकता है उस घटना का वर्णन करो।

फए० नही, मुझे तो कुछ भी नही करना है। मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करने का प्रयास करूगा। चाहे मैं स्वय सुकरात के बारे मे बोलूं या किसी दूसरे को उसके बारे मे बोलते सुनू। उसकी स्मृति सदा ही मुझे असीम हर्ष प्रदान करती है।

एखे० तुम्हारे सुनने वाले भी इसी धारणा के हैं। मुझे आशा है कि तुम बहुत ही बारीकी से इस घटना का वर्णन करोगे।

फए० उसके पास बैठकर मुझे एक अनोखा अनुभव हो रहा था। मैं तनिक भी महसूस न कर पाया कि मैं एक मित्र की मृत्यु पर उपस्थित हू। इसी कारण एखेक्रातेस, मेरे मन मे उसके प्रति दया भी न आई। वह ऐसी निर्भीकता से मरा, उसके शब्द और उसकी चाल इतनी कुलीन और शानदार थी कि मानो उसको परमानद प्राप्त हुआ हो। 'सुकरात, तुम धन्य हो!" मैंने मन ही मन कहा। उसका परलोक सिधारना बिना किसी दैवी बुलावे के नही हो सकता था और देवलोक म पहुचकर (यदि ऐसा होता हो) वह प्रसन्न रहगा, ऐसी भावनाओ के कारण ही मुझे उस पर दया न आई। जब कि उस समय दया का आना बहुत स्वाभाविक था। परन्तु हा, उस दिन मुझे उस आनन्द का अनुभव न हो सका, जिसका कि प्राय दर्शन-सम्बन्धी वार्ता से मुझे हुआ करता है (हमारी वार्ता का विषय दर्शन ही था) मैं प्रसन्न तो था, परन्तु उस प्रसन्नता म खेद का एक विचित्र मिश्रण था, क्योकि मन मे यह बात घूम घूमकर आती थी कि अब उसे तुरन्त ही मरना है। इस मिश्रित भावना का अनुभव सभी कर रहे थ। हम बारी-बारी से हसते और रोते थे। विशेषकर भावुक अपोलोदोरस तुम्हें तो मालूम ही है कि वह किस प्रकार का आदमी है।

एखे० हा, उसे खूब जानता हू।

फए० वह तो बिल्कुल आपे से बाहर हो गया और मैं तथा दूसरे शोकग्रस्त थे।

एखे० कौन-कौन उपस्थित था ?

फए० अथेन्सवासियो मे से अपोलोदोरस के अतिरिक्त क्राइतोबुलस और उसका पिता क्राइतो, हेरमोगेनेस, एपिगेनेस, एस्खिनेस, अन्तिथनेस उपस्थित थे। इसी प्रकार पएआनिआ की नगर पालिका के क्षेत्र से क्तेसिप्पुस मनेखेनुस और कुछ दूसरे सज्जन भी थे। जहा तक मुझे याद है, प्लेटो बीमार था।

एखे० क्या कुछ अजनबी भी वहा थे ?

फए० हा, थे तो। थेब्स का सिम्मअस, सबेस और फएदेन्देस

और मेगारा वासी एउकलिद तथा तेर्पसिओन भी आये थे।

एखे : क्या अरिस्तिप्पुस तथा क्ल्युम्ब्रोतुस भी आये थे ?

फाए : नहीं, सुना कि वे अएगिना मे थे।

एखे : और भी कोई था ?

फाए : मेरे ख्याल से बस इतने ही थे।

एखे : अच्छा, तुम्हारी बातो का विषय क्या था ?

फाए : मैं आरम्भ से ही बताऊंगा और सारे वार्तालाप को दुहराने का प्रयत्न करूंगा। हम प्रातः होते ही उस स्थल पर इकट्ठे हुआ करते थे, जहा कि मुकद्दमे की कार्यवाही चली थी। वह जेल के निकट ही है। जेल का फाटक सवेरे ही नहीं खुलता था, इसलिए फाटक खुलने तक हम उसी स्थल पर आपस मे बातचीत करते हुए प्रतीक्षा किया करते थे। फिर अन्दर जाकर हम प्रायः सारा दिन सुकरात के साथ ही बिताते थे। अन्तिम प्रात को हम नियत समय से कुछ पहले ही इकट्ठे हो गये, क्योंकि हमने गई शाम को ही जेल छोड़ते समय सुना था कि देलोस से वह पवित्र जहाज लौटा है, इसलिए हमने उसी निश्चित स्थान पर कुछ सबेरे ही मिलने की व्यवस्था की थी। हमारे वहा पहुचने पर, जेलर ने फाटक खोला, परन्तु हमारे अन्दर जाने के बजाय वह स्वयं ही बाहर आया और सूचना दी कि फिर से न बुलाए जाने तक हमे वही प्रतीक्षा करनी होगी, क्योंकि 'एकादश' सुकरात के पास थे और वे उसकी जजीरें खोल रहे थे। वे उसे यह आदेश भी सुना रहे थे कि उसकी मृत्यु उसी दिन होनी है। अन्दर जाकर जेलर जल्दी ही वापस लौटा और हमें अन्दर आने को कहा। हम भीतर चले गये और देखा कि जजीरों को बस खोला ही गया है। जानथिप्पे,[1] तुम तो उसे जानते ही हो, उसके बच्चे को गोद मे लिए उसके पास ही बैठी थी। हमें देखते ही उसने रोना आरम्भ किया और कहने लगी (जैसे कि स्त्रियों की आदत है), "यह वह क्षण है, जब आप अपने मित्रों के साथ और वे आप-के साथ अन्तिम भेंट करेंगे।" इस पर सुकरात क्राइतो की ओर मुड़ा और उससे कहा, "क्राइतो, इसको जरा घर तो पहुचाओ।" अतः क्राइतो के कुछ नौकर उसे वैसे ही रोते-बिलखते छाती पीटते, वहा से ले गए। जब वह चली गई, तो सुकरात ने खाट पर बैठते हुए नीचे झुककर अपनी टांगों को रगड़ा और कहने लगा, "खुशी भी क्या निराली वस्तु है। इसका दुःख के साथ कितना अद्भुत सम्बन्ध है ! ये दोनों एक-दूसरे के विलोम माने जाते हैं, क्योंकि एक ही समय एक ही साथ ये मनुष्य के पास नहीं रहते, परन्तु फिर भी इनमें से एक का अनुसरण करने वाले को विवश

होकर दूसरे को भी ग्रहण करना पडता है। इनके शरीर तो दो हैं, परन्‌
एक ही सिर से जुडे हुए हैं। मुझे विश्वास है कि यदि एसोप'' को इनक
ध्यान होता, तो वह अवश्य ही इनके बारे मे एक ऐसी कथा लिखता
जिस मे वह ईश्वर को इन दोनों के परस्पर सघर्ष को निपटाने का प्रयत्‍
करते दिखाता, परन्तु ऐसा न कर सकने पर उसने इनके सिर मिला दिए
यही कारण है कि जब इनमे से एक को आना होता है, तो दूसरा भी उस
के पीछे होता है, जैसा कि मैं स्वय अपने अनुभव से जानता हू। मेरी टाग
में जजीरो से पीडा होने के बाद अब उनके उतरते ही मुझे प्रसन्नता क
अनुभव हो रहा है।"

इस पर सेबेस ने कहा, मेरे लिए कितनी खुशी की बात है कि आपने
एसोप का नाम लिया। इससे मुझे एक प्रश्न याद आया है—वह प्रश्न बहुतो
ने पूछा है और मुझसे कवि एवेनस ने यही प्रश्न परसो पूछा था। वह
अवश्य ही यह प्रश्न फिर पूछेगा। इसलिए यदि आपकी इच्छा हो कि मैं
उसके लिए उत्तर तैयार रखू तो कृपया यह तो बताइये कि मैं उसे क्या
उत्तर दू? वह यह जानना चाहता है कि आप आजकल जेल मे बैठे बैठे
एसोप की कथाओ का पद्य रूपान्तर क्यो लिख रहे है और साथ ही अपोलो
के सम्मान मे वह स्तुति भी क्यो लिखी जब कि आपने आजीवन कभी प
की एक पक्ति भी नही लिखी?'

सुकरात ने उत्तर दिया कि एवेनस से सच्ची बात ही कहना। सच तो
यह है कि मुझे उसके साथ या उसकी कविता के साथ स्पर्द्धा करने का कोई
इरादा नही। जहा तक मैं जानता हू वैसा करना कोई आसान काम नही।
मैं केवल यह देखना चाहता हू कि क्या मैं अपने अनेक स्वप्नो के पलो
के प्रति अपनी शङ्काओं को दूर कर सकता हू कि नही। जीवन भर मुझ
प्राय स्वप्नो मे सकेत मिलते रहे कि मुझे सगीत रचना करनी चाहिए।
यही स्वप्न मुझे कभी एक रूप म, तो कभी दूसरे मे प्रकट होता रहा, परन्तु
प्रत्येक बार यही सकेत मिलता या लगभग ऐसे ही शब्द सुनने को मिलते कि
'सुकरात! तुम सगीत" की ओर ध्यान दो और स्वर रचना करो।' आज
तक मैं यही समझता रहा कि ये सकेत मुझे 'दर्शन'" के अध्ययन के लिए
ही प्रोत्साहित तथा बाध्य करते हैं, क्योंकि 'दर्शन', जिसका मैं आजीवन
अनुसरण करता आया हू, सर्वोत्तम तथा महानतम सगीत है। मैं यही समझा
कि स्वप्न मुझे वही कार्य करने को कहते हैं, जो मैं पहले से ही कर रहा हू।
ठीक उसी प्रकार, जैसे दर्शक, दौड के एक प्रतियोगी को दौडने के लिए
कहते हैं जबकि वह दौड ही रहा होता है। परन्तु मुझे अपने विचारो पर

पूरा विश्वास न था। मुझे ऐसा लगा कि हो न हो, संगीत का अभिप्राय संगीत के लोक प्रचलित अर्थ से ही है। अब मृत्युदंड घोषित होने के बाद त्यौहार के कारण दण्ड भुगतने में कुछ विलम्ब हुआ। इस अवसर को वरदान मानकर मैंने सोचा कि उस द्विविधा से मुक्ति पाने के लिए स्वप्नो के आदेशानुसार मुझे मरने से पूर्व कुछ पद्यो की रचना करनी ही चाहिए। पहले मैंने त्यौहार के इष्टदेव के सम्मान मे एक स्तुति लिखी और फिर यह सोचा कि वास्तविक कवि बनने के लिए केवल शब्दो का जाल रचना ही काफी नही, कुछ कहानियो की रचना भी की जानी चाहिए, परन्तु मैं रचना-कुशल नहीं, इसलिए मैंने एसोप की कुछ कथाओ को लेकर उनका पद्य-रूपान्तर लिख दिया, क्योंकि सबसे पहले मुझे उसीका विचार आया और उसकी वे रचनाए मेरे पास थी और वे मुझे अच्छी तरह मालूम थी। सेबेस, तुम ये सारी बातें एवेनस से कहना और उससे प्रसन्न रहने को कहना। उससे यह भी कहना कि यदि वह बुद्धिमान हो तो मेरे पदचिह्नो पर चलने मे विलम्ब न करे और यह भी कि आज मेरा जाना निश्चित ही है। अथेन्सवासियो की इच्छा जो ठहरी।

सिम्मिअस ने कहा, 'कैसा सन्देश और किस आदमी को! मैं उससे प्राय मिलता रहा हू। जहा तक मैं उसको समझता हू, यह कहे देता हू कि वह आपकी राय को केवल विवशता की स्थिति मे ही अपना सकता है।

'क्यों, एवेनस एक दार्शनिक नही? सुकरात ने पूछा।"

'मेरे ख्याल मे तो है", सिम्मिअस ने कहा।

'तब वह या दार्शनिक के स्वभाव वाला अन्य कोई व्यक्ति मरने का इच्छुक हो सकता है, परन्तु हा, वह आत्महत्या नही करता, क्योकि ऐसा कर्म विधान के विरुद्ध है।"

इसी समय उसने अपने शरीर की स्थिति बदल दी और अपनी टागो को खाट से नीचे करके जमीन पर रख दिया और बाकी बातचीत उसने बैठकर ही की।

अब सेबेस ने "पूछा, आप ऐसा क्यो कहते हैं कि मनुष्य को आत्महत्या नही करनी चाहिए और एक दार्शनिक को मरने के लिए तत्पर रहना चाहिए?"

सुकरात ने सेबेस और सिम्मिअस को उत्तर देते हुए कहा, 'तुम दोनो फिलोलाउस के शिष्य हो। क्या तुमने उसको कभी भी इस विषय पर बोलते नही सुना?"

"सुना तो है, परन्तु सुकरात, उनकी भाषा अस्पष्ट थी।"

"मेरे शब्द भी उसी के शब्दों की प्रतिध्वनि मात्र हैं। जो कुछ मैंने सुना है [illegible] करने [illegible] मे सोचना [illegible] क्षण और सूर्यास्त के बीच मुझसे और कौन-सा भला कार्य हो सकता है?'

"हां तो फिर बोलिए कि आत्महत्या को अवैध क्यों मानें? मैंने यही बात निश्चित रूप से फिलोलाउस के मुख से भी सुनी है, जबकि वे हमारे साथ थेब्स में ठहरे हुए थे। वही फिलोलाउस, जिनके बारे में आप अभी पूछ रहे थे। उनके अतिरिक्त और भी हैं, जो इसी मत को मानते हैं परन्तु मैं उनकी बातों का अभिप्राय कभी भी समझ न पाया।"

सुकरात ने उत्तर दिया, "धीरज रखो, इन बातों को समझने का दिन भी आएगा। मेरे विचारानुसार तुम इसी बात पर विस्मित हो कि जब अन्य बुरी बातें किसी विशेष स्थिति में कुछ व्यक्तियों के लिए भली हो [illegible] है, तो मृत्यु की बात एक अपवाद क्यों है? यदि मनुष्य की भलाई मरने में ही निहित है तो उसको स्वयं अपना उपकारी बनने में क्या आपत्ति है जो उसे दूसरे ही कारणों की प्रतीक्षा करनी पड़ती है?"

'बिलकुल यही" सेबेस ने धीरे से हंस कर अपने प्रान्त की बोली बोयोतियाई में कहा।

'मैं मानता हूं कि मेरे कथन में असंगति है, परन्तु अन्त में शायद कोई वास्तविक असंगति प्रतीत न हो। गुप्त रूप से प्रचारित एक मत के अनुसार मानव एक कैदी है, जिसको दरवाजे खोलकर भागने का अधिकार नहीं। यह एक गूढ़ रहस्य है, जिसको मैं स्वयं भली प्रकार समझ नहीं पाता, फिर भी मेरा यही विश्वास है कि हमारे संरक्षक देवता ही हैं और हम उन्हीं की सम्पत्ति हैं। क्या तुम इस मत को नहीं मानते?"

"हां, बिलकुल मानता हूं', सेबेस ने कहा।

'अच्छा यदि तुम्हारी निजी सम्पत्ति में से, उदाहरणार्थ कोई बैल या गधा स्वयं को मारने का साहस करे, जबकि तुमने उसको मारने के लिए अभी अपना इरादा प्रकट न किया हो, तो क्या तुम्हें उस पर क्रोध नहीं आएगा और यदि तुम्हारा बस चले तो क्या तुम उसको दण्ड नहीं दोगे?"

"अवश्य दूंगा", सेबेस ने कहा।

'हां, यदि इस समस्या को भी इसी दृष्टिकोण से परखें, तो कहना न होगा कि मनुष्य को आत्महत्या न कर तब तक प्रतीक्षा करनी चाहिए जब तक कि ईश्वर न बुलाए, जैसे कि अब उसने मुझे बुलाया है।"

सेबेस ने उत्तर दिया, "हां सुकरात, जो कुछ आप कहते हैं, वह ठीक ही लगता है, परन्तु अभी आपने इस मत को प्रकट किया कि एक दार्शनिक को मरने का इच्छुक होना चाहिए और अब आप इस सत्य से मिलते-जुलते सिद्धान्त का बात करते हैं कि ईश्वर ही हमारा सरक्षक है और हम उसकी सम्पत्ति। इन दोनो मतो का मेल कैसे हो सकता है? ज्ञानी जब उस कार्य को त्याग दें, जिसमे उनका प्रशासन सर्वश्रेष्ठ शासको अर्थात् देवताओ द्वारा हो रहा हो, तो यह कोई बुद्धिमानी की बात नही। निश्चय ही कोई भी ज्ञानी व्यक्ति ऐसा नही सोच सकता कि देवताओ के निरीक्षण से स्वतत्र होने पर वह उनसे कही अधिक अच्छी तरह स्वय अपना ध्यान रख सकता है। हो सकता है, एक मूर्ख ऐसा सोचे कि अपने सरक्षक से भागकर मैं फायदे मे रहूगा। उसको यह ख्याल नही रहता कि उसका कर्तव्य उस भलाई से दूर न भागना तथा अपने स्थान पर टिककर रहना ही है। वह यह भी नही समझता कि भाग निकलने मे उसको कोई लाभ नहीं। जो ज्ञानी हो, वह सदा ही अपने से ज्यादा ज्ञानवान् के निकट रहना चहेगा। तो हा, सुकरात, यह तर्क अभी कही गई बात के विरुद्ध दिखाई देता है, क्योकि इस दृष्टिकोण के अनुसार मृत्यु के समय ज्ञानवान् को दुखी तथा मूर्ख को प्रसन्न होना चाहिए।'

सेबस की उत्सुकता को देखकर सुकरात प्रसन्न होता दिखाई दिया। अब हमारी ओर मुडकर उसने कहा, 'यह व्यक्ति सदा ही पूछताछ करता फिरता है और किसी बात को सुनकर सहज ही सतुष्ट नही होता।'

इस पर सिम्मिअस ने कहा, 'निश्चय ही सेबेस के विरोध का पलडा भारी लगता है क्योकि एक वास्तविक ज्ञानवान व्यक्ति द्वारा अपने से श्रेष्ठ सरक्षक को मामूली-सी बात पर छोडकर भागने का क्या अर्थ हो सकता है? मेरे विचारानुसार सबेस आपकी ओर सकेत कर रहा है। वह सोच रहा कि आप हमे और देवताओ को (जिन्हे आप हमरा भला चाहने वाले सरक्षक मानते हैं) त्यागने के लिए बहुत ही ज्यादा उत्सुक है।"

सुकरात ने उत्तर दिया कि तुम्हारी बात युक्तियुक्त है और तुम चाहते हो कि मैं इस अभियोग की सफाई ऐसे दू, जैसे मैं अदालत मे उपस्थित हू।

"हम आपसे यही आशा करते है", सिम्मिअस ने कहा।

"तब मुझे तुम्हारे सामने न्यायाधीशो के सम्मुख प्रस्तुत किए गए उस प्रतिवाद से कही अधिक सफल सफाई पेश करने का प्रयत्न करना होगा। सेबेस और सिम्मिअस, मैं यह मानने को बिलकुल तैयार हू कि मुझे

मरने पर दुःख होना चाहिए, परन्तु मेरे हृदय मे दो बातो ने स्थान किया है। एक यह कि मैं दूसरे भले तथा ज्ञानवान् देवताओ के पास जा रहा हू (इस बात की सच्चाई का तो मुझे पूर्ण विश्वास है), दूसरी यह कि मैं उन मरे हुए व्यक्तियो के पास जा रहा हू, जो उन लोगो से कही अच्छे हैं जिन्हे मैं पीछे छोडकर जा रहा हूं। (हालाकि इस दूसरी बात के सम्बन्ध मे मेरा निश्चय उतना पक्का नही) यही कारण है कि मैं दुःखी नही, जैसा कि मुझे होना चाहिए था, क्योकि मुझे पूरी आशा है कि मरने वालो के लिए भी कुछ न कुछ रखा रहता है और जैसा कि कहा जाता है, सज्जनों को मिलने वाले फल, कुकर्मियो के फलो से कही अधिक अच्छे होते हैं।"

"परन्तु सुकरात, क्या आप अपने विचारो को भी अपने साथ ही ले जाना चाहते हैं?" सिम्मिअस ने पूछा। "क्या आप उन्हें हमारे सम्मुख नहीं रखेंगे? क्या हमे उन विचारो से लाभ उठाने का अधिकार नही? इसके अतिरिक्त यदि आप हमें सन्तुष्ट करने मे सफल हुए, समझा जाएगा कि आपने अपने विरुद्ध लगाए गए अभियोग की सफाई भी पेश कर दी हैं।"

ठीक है मैं अपनी ओर से पूरा प्रयत्न करूगा, परन्तु पहले जरा क्राइतो की बात सुन लू। वह बहुत समय से मुझसे कुछ कहना चाहता है।"

इस पर क्राइतो ने कहा, "सुकरात, मुझे केवल इतना कहना है कि जिस कर्मचारी के हाथो तुम्हे विष पीना है, वह मुझसे कहता रहा है और तुम्हे यह सन्देश पहुचाना चाहता है कि तुम्हें ज्यादा बातें नही करनी चाहिए। उसका कहना है कि बातें करने से शरीर मे गर्मी उत्पन्न होती है, जो विष की प्रतिक्रिया मे बाधक सिद्ध होती है। जो व्यक्ति स्वय को उत्तेजित करते हैं, उनको कभी-कभी विवश होकर विष की दूसरी या तीसरी खुराक भी देनी पडती है।"

"उसे अपने काम का ध्यान रखना चाहिए और यदि आवश्यकता पडे तो उसे दूसरी या तीसरी बार भी विष देने के लिए तैयार रहना चाहिए, बस।"

क्राइतो ने कहा कि मुझे मालूम ही था कि तुम्हारा उत्तर क्या होगा, परन्तु मैं उसको सन्तुष्ट करने पर मजबूर हुआ।

"कोई बात नही", सुकरात ने क्राइतो से कहा और फिर सिम्मिअस और सेबेस से उसने कहा, अब मैं तुम न्यायाधीशो के सामने यह सिद्ध करना चाहता हू कि मृत्यु को निकट आते देखकर एक दार्शनिक का प्रसन्न-चित्त रहना युक्तियुक्त है और यह भी कि मृत्यु के बाद वह परमानन्द पाने की आशा कर सकता है। ऐसा क्यो? मैं अब यही समझाने का प्रयत्न करूगा, सिम्मि-

अस और सेबेस, इस बात की बहुत ही सम्भावना है कि अन्य लोग दर्शन के एक सच्चे भक्त को गलत समझें। वे इस बात को नही समझते कि दार्शनिक सदा ही मृत्यु का अन्वेषण करता रहता है और सदा ही मरता रहता है और यदि ये बातें सच हैं तो उसे आजीवन मरने की इच्छा रहती होगी। ऐसी स्थिति मे मृत्यु के आने पर वह भला शोक क्यो करे जबकि सारा जीवन वह उसी की खोज करता रहा हो।"

इस पर सिम्मिअस ने हसते हुए कहा, (उस हसी मे विनोद लेश मात्र भी न था) 'सुकरात, आपकी बातें सुनकर मुझे हसी आई। मेरे मन मे यह प्रबल विचार आया कि जो भी कोई आपके इन शब्दो को सुनेगा, यही कहेगा कि आपने दार्शनिको का बहुत ही उपयुक्त वर्णन किया है। हमारे घर पर हमारे बन्धुगण भी यही कहेंगे कि दार्शनिक वास्तव मे मृत्यु रूपी जीवन का ही अन्वेषण करता फिरता है और उनके विचारानुसार दार्शनिक अपनी ऐच्छिक मृत्यु के ही योग्य है।"

'सिम्मिअस, उनका ऐसा कहना अथवा सोचना ठीक ही है, परन्तु यह शब्द 'उनके विचारानुसार' यथातथ्य नही, क्योकि सच्चा दार्शनिक किस मृत्यु को चाहता है, उस मृत्यु की क्या प्रकृति है और वह किस प्रकार की मृत्यु के योग्य है, ये सभी बातें सामान्य व्यक्ति क्या जाने ? खैर, उन्हे रहने दो। हम इस समस्या पर आपस मे ही विचार विमर्श करेंगे। अच्छा यह तो बताओ कि हम मृत्यु जैसी किसी चीज के होने पर विश्वास है कि नही ?"

'बिल्कुल है", सिम्मिअस ने उत्तर दिया।

"क्या यह आत्मा और शरीर की जुदाई नही ? इस जुदाई के क्रम का पूरा होना मृत्यु है। जब शरीर आत्मा से विच्छिन्न हो जाता है और आत्मा शरीर से छुटकारा पाकर स्वय मे विलीन हो जाती है, तो वह स्थिति मृत्यु नही तो और क्या है ?"

"हा, है', उसने उत्तर दिया।

"एक दूसरा प्रश्न भी है, जिस पर सहमत हो जाने से सम्भवत हमारी वर्तमान समस्या पर और प्रकाश पडेगा—क्या एक दार्शनिक को खान पान के विलासो (यदि उनको विलास कहना असगत न हो) की चिन्ता करनी चाहिए ?"

'बिलकुल नही", सिम्मिअस ने उत्तर दिया।

"और मोहजन्य विलासिता के बारे मे क्या कहा जाय ? उसे इसकी चिन्ता करनी चाहिए क्या ?'

किसी भी दशा में नहीं।'

और क्या वह शरीर को संतुष्ट करने के अन्य साधनों की चिन्ता करेगा ? उदाहरणार्थ वस्त्र व वस्तु अथवा अन्य सजावट व आभूषणों की प्राप्ति की चिन्ता उसे लगी रहेगी या कि प्राकृतिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त शेष सभी वस्तुओं से उसको घृणा होगी ? तुम्हारा क्या विचार है ?'

'मेरे विचारानुसार एक सच्चा दार्शनिक उन चीजों से घृणा ही करेगा।

तो क्या तुम यह मानते हो कि वह शरीर को छोड़कर केवल आत्मा का ही ध्यान रखता है ? वह जितना भी उसमें हो सके, शरीर से दूर भागकर आत्मा में ही विलीन रहना चाहेगा।'

'हां, ठीक है।"

इस प्रकार की बातों में शेष व्यक्तियों से कहीं अधिक, केवल दार्शनिक ही प्रत्येक ढंग से आत्मा और शरीर के सम्बन्धों की उपेक्षा करते पाए जाते हैं।'

'हां।'

जबकि सिम्मिअस, शेष संसार की यही राय है कि जो व्यक्ति विलासों से परिचित नहीं जो शारीरिक विलासों में भाग नहीं लेता वह जीवित रहने के योग्य नहीं तथा जो इनके प्रति उदासीन हो, वह मरे हुए के समान ही है।'

'यह भी ठीक नहीं।"

'अच्छा ज्ञान की वास्तविक प्राप्ति के बारे में हमारे क्या विचार हैं ? यदि इसका अनुसंधान करने के लिए शरीर को भी आमन्त्रित किया जाय तो यह सहायक सिद्ध होगा कि बाधा ? मेरे पूछने का तात्पर्य यह है कि दृष्टि तथा श्रवण शक्ति में कोई सच्चाई है क्या ? क्या वे जैसा कि कवि गण कहते हैं, झूठे साक्षी नहीं ? और यदि यही झूठ और अस्पष्ट है, तो शेष ज्ञानेन्द्रियों का क्या कहा जाये, क्योंकि ये तो अनुभव प्राप्ति के साधनों में सर्वश्रेष्ठ हैं ?'

'निस्सन्देह", उसने उत्तर दिया।

'तो फिर आत्मा को सत्य का बोध कैसे हो ? ध्यान रहे कि शरीर की सहायता से किसी भी वस्तु पर चिंतन करने से स्पष्टतः धोखा हो जाता है।'

'हां, ठीक है।'

'तो क्या वास्तविक अस्तित्व का ज्ञान यदि उसे प्राप्त हो वह केवल उसके निजी चिंतन द्वारा ही हो सकता है। ठीक है न ?'

"हां ।"

"और चिंतन उसी समय श्रेष्ठतम होता है जबकि चित्त आत्मा मे रमा हो और ध्वनि, दृष्टि, पीड़ा या विलास ये सभी उसके कार्य मे किसी भी प्रकार की बाधा न डालें अर्थात् जब आत्मा शरीर के प्रभाव से मुक्त हो, उसको इन्द्रियज्ञान तथा भौतिक इच्छाओं से मुक्ति प्राप्त हो चुकी हो और उसमें केवल सत्य को प्राप्त करने की इच्छा हो ।'

'निश्चय ही यह ठीक है ।"

'इस प्रकार एक दार्शनिक शरीर का निरादर करता है। उसकी आत्मा शरीर से पृथक् होकर एकाकी रहना चाहती है ।"

'हां ठीक है ।"

"हां, परन्तु सिम्मिअस, एक और बात है । ऐकान्तिक न्याय जैसी कोई वस्तु होती है या नहीं ?"

'निश्चित रूप से होती है ।"

'और ऐकान्तिक सौंदर्य तथा ऐकान्तिक शुभ ?"

"निस्सन्देह होते हैं ।'

'परन्तु क्या तुमने इनमें से किसी को कभी अपनी आंखों से देखा ?"

'बिलकुल नहीं ।"

'क्या तुम कभी किसी दूसरी ज्ञानेन्द्रिय से इनका बोध कर पाये ? और मैं केवल इनका ही नहीं कहता, मेरा आशय ऐकान्तिक महानता, ऐकान्तिक स्वास्थ्य, बल और प्रत्येक वस्तु की वास्तविक प्रकृति अथवा सार से है । क्या इनकी वास्तविकता तुमने कभी शारीरिक अंगों द्वारा मापी है ? या ऐसा कह लो, क्या वही व्यक्ति इनकी विभिन्न प्रकृतियों का निकटतम ज्ञान प्राप्त नहीं करता, जो अपनी मानसिक दृष्टि को इस प्रकार सधा ले कि उसके चिंतन में आने वाली प्रत्येक वस्तु का सार बिलकुल शुद्ध रूप से उसकी समझ में आये ?"

"अवश्य ही ।"

"और केवल वही व्यक्ति इनका विशुद्ध ज्ञान प्राप्त करेगा, जो इनमें से प्रत्येक की ओर चित्त द्वारा ही जाए और चिंतन करते समय दृष्टि या किसी अन्य ज्ञानेन्द्रिय को अपने विवेक में बाधक सिद्ध न होने दे, बल्कि केवल अपने चित्त रूपी दीपक के निजी निर्मल प्रकाश के सहारे ही हर वस्तु की वास्तविकता की खोज करे और वह जो आंखों, कानों, या यों कहो कि सारे शरीर से, जितनी भी उससे हो सके, मुक्ति पाये क्योंकि वह जानता है कि ये सभी भ्रामक तत्त्व हैं, जो कि आत्मा को भ्रष्ट

सत्य तथा ज्ञान की प्राप्ति मे बाधा डालते है । यदि ऐसे व्यक्ति को नही, तो सत्य के स्वरूप का ज्ञान और किसे प्राप्त हो सकता है ?"

सिम्मिअस ने उत्तर दिया, "सुकरात, आपकी बातो से विचित्र सत्य छलकता है ।"

"जब वास्तविक दार्शनिक इन सभी बातो का मनन कर लें, तो वे इस प्रकार निष्कर्ष निकालेंगे वे कहेंगे 'क्या हमने चिंतन करने का ऐसा मार्ग नही पाया है, जो हमें और हमारे तर्कों को निष्कर्ष तक पहुचाता दिखाई देता है ? वह क्या है ? यही कि जब तक हम शरीर के साथ हैं और जब तक आत्मा शारीरिक त्रुटियो से भ्रष्ट है, हमारी कामनाए सन्तुष्ट नहीं होगी और हमारी कामना है सत्य को प्राप्त करना क्योकि केवल खाने पीने की आवश्यकता होने के कारण ही हमारा शरीर अगणित दुखो का स्रोत है और यह बीमारियो का भी शिकार हो सकता है । ये बातें सत्य की खोज मे विघ्न डालती हैं । इन्ही के कारण हम प्रेम, वासना, भय, हर प्रकार की उमगो तथा असीम मूर्खता के वशीभूत हो जाते हैं । क्या कारण है इन युद्धो के, झगड़ो के और उपद्रवो के ? क्या शरीर और इसकी वासनाए ही इनके मुख्य कारण नही है ? धन के प्रेम से युद्ध की उत्पत्ति होती है और शरीर तथा शरीर की सेवा के लिए धन की प्राप्ति आवश्यक है । इसी प्रकार की सभी बाधाओ के कारण हमे दर्शन के अध्ययन के लिए समय ही नही मिलता । अन्तिम और निकृष्टतम बात तो यह है कि जब कभी हमे फुर्सत मिलती है और हम स्वय को किसी प्रकार के विचार विमर्श मे व्यस्त करते हैं, तो सदा ही शरीर रूपी बादल हम पर आ टूटते हैं और हमारे अनुसधान मे उत्पात और हलचल मचा देते हैं, परिणामस्वरूप हम विह्वल होकर सत्य का दर्शन नही कर पाते । अनुभव ने हम सिखाया है कि यदि हमें किसी भी वस्तु का विशुद्ध ज्ञान चाहिए, तो वह हमे शरीर से पृथक् होकर ही मिल सकता है । जिस प्रज्ञान के हम प्रेमी हैं, वह हमें जीवन काल मे नही, बल्कि मृत्यु के बाद ही मिल सकता है, क्योकि यदि शरीर धारण करके आत्मा को शुद्ध ज्ञान प्राप्त नही होता, तो यह सिद्ध होता है किया तो विवेक प्राप्त हो ही नही सकता और यदि होता है, तो मृत्यु के बाद ही हो सकता है, क्योकि तभी आत्मा शरीर से पृथक् होकर स्वय मे विलीन होगी । इस मानव जन्म मे हम ज्ञान के निकटतम तभी होते हैं, जब हमारा अपने शरीर के साथ न्यूनतम सवाद अथवा समागम हो, और हम शारीरिक प्रवृत्तियो की अतिशयता से बचकर तब तक स्वय को शुद्ध रखे रहें जब तक कि परमात्मा स्वय स्वेच्छा से हमें मुक्त न कर दें ।

—

इस प्रकार शरीर की जड़ता से मुक्त होकर हम पवित्र हो जायेंगे और हमारा समागम पवित्र के साथ ही होगा। तब हम स्वयं उस ज्वलंत प्रकाश को प्रत्येक स्थान पर पायेंगे, जोकि वास्तव में सत्य का ही प्रकाश है।' क्योंकि अपवित्र पवित्र के सम्मुख नहीं आ सकता। हे सिम्मिअस, ज्ञान के वास्तविक प्रेमी एक-दूसरे से इसी प्रकार की बातें तथा ऐसी ही बातों पर चिंतन किये बिना रह नहीं सकते। इस बात को मानते हो कि नहीं?

"निस्सन्देह, मानता हूं सुकरात।"

"परन्तु, हे मित्र! यदि यह सत्य हो, तो मुझे आशा करनी चाहिए कि जब मैं अपनी इस यात्रा का अन्त पाऊंगा, तो मुझे अपने समस्त जीवन की साधना का फल मिलेगा। इसलिए मैं यह यात्रा अत्यन्त ही प्रसन्नता से कर रहा हूं। केवल मैं ही नहीं, बल्कि वह प्रत्येक व्यक्ति जिसको यह विश्वास हो कि उसका चित्त तैयार है और उसने शुद्धता प्राप्त की है, इस यात्रा को प्रसन्नता से करता है।"

"निस्सन्देह", ठीक है, सिम्मिअस ने उत्तर दिया।

"और यह शुद्धता क्या है? बस, यही आत्मा की शरीर से पृथक्ता है या जैसे कि मैं पहले कह चुका हूं, आत्मा की प्रवृत्ति के अनुसार उसका शरीर से विच्छिन्न होकर, प्रत्येक दिशा से स्वयं को समेटकर स्वयं में समुचित रूप से विलीन होना, जितना भी उससे हो सके, दूसरे जीवन की भांति इस जीवन में भी अकेले ही अपने स्थान पर रहना, शरीर रूपी जंजीरों से मुक्ति पाना है।"

'बिलकुल ठीक है", उसने कहा।

"और आत्मा के शरीर से मुक्त होकर पृथक् होने को ही मृत्यु कहते हैं?"

"हां, कहते हैं।"

"और केवल वास्तविक दार्शनिक ही सदैव आत्मा को मुक्ति दिलाने पर तुले होते हैं। क्या आत्मा को शरीर से मुक्त करना, इससे पृथक् करना उनकी विशेष साधना नहीं?"

"हां, है।"

"और जैसा कि मैंने पहले भी कहा है, यदि कोई व्यक्ति जितना भी उससे हो सके, मृत अवस्था में रहने की साधना कर रहा हो और फिर वही व्यक्ति वास्तविक मृत्यु के आने पर शोक करे, तो यह एक हास्यास्पद विसंगति नहीं तो और क्या होगी?"

"यह तो स्पष्ट ही है।"

'और सिम्मिअस, वास्तविक दार्शनिक सदैव मरने के अभ्यास मे व्यस्त रहते हैं, इसी कारण दूसरो की अपेक्षा उनके लिए मृत्यु तनिक भी भयानक नही। इसी बात को ऐसे भी कहा जा सकता है यदि वे हर प्रकार से शरीर के शत्रु रहे हो, केवल आत्मा की ही मैत्री चाहते हो और फिर उनकी यही कामना पूर्ण होती है तो उनका व्यवहार क्या असगत न होगा, यदि वे उस अवसर पर कापें या शोक करें, जबकि उन्हे खुशिया मनानी चाहिए, क्योकि तब वे उस स्थान के लिए प्रस्थान करने को होते हैं, जहा पहुचकर उन्हें जीवन भर की अभीष्ट वस्तु अर्थात् प्रज्ञान के मिलने की आशा है और साथ-ही-साथ उन्हे अपने शत्रु, अर्थात शरीर, से भी मुक्ति मिलती है। परलोक मे हमे सासारिक प्रेम मिलेगा। वहा हम अपनी पत्नी अथवा बेटे से मिलेंगे, उनसे बातचीत करेंगे इस प्रकार की आशाए अनेको को प्रोत्साहित करके उनके मन मे परलोक सिधारने की इच्छा उत्पन्न करती है, परन्तु जो प्रज्ञान का सच्चा प्रेमी हो और यह दृढ विश्वास रखता हो कि केवल परलोक मे ही वह उस प्रज्ञान का समुचित आनन्द ले सकता है, क्या वह कभी मृत्यु को आते देखकर शोक-ग्रस्त हो सकता है ? क्या वह खुशी से प्रस्थान न करेगा ? हे मित्र ! यदि वह सच्चा दार्शनिक है तो वह अवश्य प्रसन्नता से ही जायेगा क्योकि उसे यह दृढ विश्वास है कि वही और केवल वही उसको प्रज्ञान अपने निर्मल रूप मे मिलेगा और यदि यह सच हो, जैसा कि मैं कह चुका हू, तो मृत्यु से डरना उसके लिए बहुत ही मूर्खता की बात होगी।"

"निस्सन्देह मूर्खता ही होगी", सिम्मिअस ने उत्तर दिया।

"और यदि मृत्यु के आने पर कोई व्यक्ति शोक ग्रस्त हो, तो उसकी हिचकिचाहट क्या इस बात का पक्का प्रमाण नही कि वह प्रज्ञान का सच्चा प्रेमी नहीं है बल्कि शारीरिक मोह के साथ साथ सम्भवत उसको धन अथवा अधिकार या दोनो की लालसा हो ?"

"हा, हो सकता है।"

"और हां, सिम्मिअस, क्या साहस विशेष रूप से एक दार्शनिक का ही विशिष्ट लक्षण नहीं ?"

'हा, है तो।"

"फिर सयम को देखो। साधारण व्यक्ति भी जानते है कि सयम वासनाओं के नियन्त्रण तथा व्यवस्थापन को ही कहते हैं। इस प्रकार वासनाओं से उत्तम होने के कारण क्या सयम एक ऐसा गुण नही, जो केवल शरीर से घृणा करने वालो तथा दार्शनिको मे ही हो सकता है ?"

"निश्चित रूप से हो सकता है।"

"क्योंकि यदि अन्य व्यक्तियों के बारे में सोचो, तो यही प्रतीत होता है कि उनमें साहस और संयम का होना वास्तव में एक अपवाद ही है।"

"वह कैसे ?"

उसने कहा कि "यह तो तुम्हें मालूम ही है कि अधिकांश लोग मृत्यु को एक बहुत ही बड़ी बला समझते हैं।

"हाँ बिलकुल ठीक है", सिम्मिअस ने कहा।

"और साहसी व्यक्ति मृत्यु से ज्यादा भयानक बलाओं से डरने के कारण ही मृत्यु का सामना करते हैं न ?"

"यह भी ठीक है।"

"इस प्रकार दार्शनिकों को छोड़कर अन्य सभी व्यक्ति भय तथा भयभीत होने के कारण ही साहसी बनते हैं और यह बात भी कितनी विचित्र है कि कोई व्यक्ति डरपोक होने के कारण ही साहसी होता है।"

धर्म की छाया मात्र रह जाती है, जबकि इन वस्तुओं का प्रज्ञान से पृथक् होकर आपस मे विनिमय होता है और उस धर्म मे तब किसी प्रकार की स्वच्छन्दता, स्वच्छता या सत्यता नही रह जाती है। इसके विपरीत सत् विनिमय मे इन सभी वस्तुओ की शुद्धि होती है और सयम, न्याय, साहस, तथा स्वय प्रज्ञान इनके ही शुद्ध रूप हैं। इसी आधार पर रहस्यो की नीव डालने वालो की बातें सार्थक लगने लगेंगी। यह कोई मूर्खता की बात नही थी, जब कि बहुत समय पहले उन्होने एक दृष्टान्त द्वारा यह सकेत किया था कि जो व्यक्ति शुद्धि के बिना और अदीक्षित ही परलोक सिधारता है, वह एक दलदल मे पडा रहता है और जो दीक्षा पाने तथा शुद्धि के बाद परलोक सिधारता है वह देवताओ के साथ ही रहता है, क्योकि जैसा उन्होने 'रहस्यो' मे कहा है, 'पाखण्डी तो बहुतेरे है पर तु रहस्य वादी साधक कुछ ही है', जिसका अभिप्राय मेरे विचारानुसार वास्तविक दार्शनिको' से ही है, जिनकी पक्तियो मे एक स्थान पाने के लिए मैंने आजीवन अपनी योग्यता के अनुरूप प्रयास किया है—मैंने यह प्रयास सुयोग्य ढग से किया है या नही, मुझ सफलता मिली है या नही, यह सब कुछ मुझे थोडे ही समय मे ईश्वर की कृपा से (यदि मेरा विश्वास ठीक हो) परलोक सिधारने पर भली प्रकार मालूम हो जाएगा। इसलिए हे सिम्मिअस और सेबेस ! मेरा विश्वास है कि तुमसे तथा इस ससार म स्थित अपने मालिको से बिछडने पर मेरा दु ख तथा शोक न करना ही ठीक है। मैं जानता हू कि मुझे परलोक मे समान रूप के अच्छे मित्र तथा मालिक मिलेंगे। प्राय लोग इस बात पर विश्वास नही करते। इसलिए यह अच्छा ही होगा यदि मैं अथेन्स के न्यायधीशो' से अधिक तुम्हें अपन शब्दो द्वारा प्रभावित करने म सफल हो जाऊ।"

सेबेस ने उत्तर दिया, "मैं आप द्वारा कही गई अधिकाश बातो से सहमत हू परन्तु लाग आत्मा से सम्बन्धित बातो के प्रति अविश्वास दिखाने को तत्पर रहत हैं। उन्ह यह डर है कि कही ऐसा न हो कि आत्मा को शरीर छाडने के बाद निवास करने के लिए कोई स्थान ही न मिले। मृत्यु के दिन ही उसका सहार और अन्त न हा जाता हो, शरीर से मुक्ति पाते ही धुए या वायु की भाति तुरन्त बिखरकर आगे निकलते हुए अपनी ही उडान मे यह शून्य सदृश न हो जाती हो ! यदि उन बुरे बन्धनो से, जिनकी चर्चा आप कर रहे थे, मुक्ति पाने के बाद वह केवल अपने स्वरूप म पुन सगृहीत होती हो, तभी सुकरात, आपकी बातो को सत्य मानने का आशाजनक आधार बनता है, परन्तु यह सिद्ध करने के लिए नुष्य की मृत्यु

के बाद भी आत्मा जिवित रहती है और इसमे शक्ति तथा बुद्धि होती है, निश्चय ही बहुत लम्बे वाद-विवाद तथा कई प्रमाणो की आवश्यकता है।"

सुकरात ने कहा, "सेबेस, तुम ठीक कहते हो। क्यो न हम इन बातो की सभावनाओ पर थोडा-सा वाद-विवाद करें?"

"वाह! मैं इनके बारे मे आपके मत को जानने का बहुत ही इच्छुक हूँ", सेबेस ने कहा।

इस पर सुकरात यों बोला, "मुझे पूर्ण विश्वास है कि अभी मेरी बातो को सुनने वाला कोई भी व्यक्ति, भले ही वह मेरे पुराने शत्रुओ अर्थात् कामदी कवियो मे से ही एक क्यो न हो, मुझे अपने से असम्बन्ध बातो के विषय मे व्यर्थ बोलने का अपराधी नही ठहरा सकता। खैर, तुम्हारी आज्ञा हो तो अनुसधान आरम्भ करें।"

"चलो, हम इस प्रश्न पर अपना ध्यान केन्द्रित करें कि मनुष्य की मृत्यु के बाद उसकी आत्मा परलोक मे जाती है या नही। मुझे एक प्राचीन सिद्धान्त याद आता है। वह इस बात का साक्षी है कि आत्मा यहा से जाकर परलोक मे रहती है और यहां वापिस आने पर पुन जन्म लेती है। यदि यह सत्य है कि मरे हुओ से ही जीवित जन उत्पन्न होते हैं, तो हमारे जन्म से पहले हमारी आत्माओ का परलोक में होना आवश्यक ही लगता है, क्योंकि यदि ऐसा न होता, तो फिर से उनकी उत्पत्ति कैसे होती? और यह बात निर्णायक सिद्ध होती यदि हमारे पास कोई वास्तविक प्रमाण होता कि जीवित जन केवल मरे हुओं के ही पुनर्जन्म पाए हुए रूप हैं, परन्तु यदि ऐसा न हो तो विवश होकर अन्य तर्कों का आश्रय लेना पड़ेगा।"

"हां, बिलकुल ठीक है", सेबेस ने उत्तर दिया।

"तो हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे। केवल मनुष्य के सम्बन्ध मे ही नहीं, बल्कि पशुओ, वनस्पति तथा प्रत्येक उस वस्तु के सम्बन्ध मे, जिसकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार प्रमाण पाना जरा सहज होगा। जिन वस्तुओं के विपर्यय होते हैं, क्या वे समस्त वस्तुएं उनसे ही उत्पन्न नहीं होतीं? मेरे कहने का तात्पर्य भले और बुरे, न्याय तथा अन्याय जैसी चीजों से है और भी अगणित विपर्यय है, जो कि अपने विपर्ययों से ही उत्पन्न होते हैं। अब मैं दिखाना चाहता हू कि सभी विपर्ययों मे अवश्य ही ऐसा ही पक्षान्तर होता है। उदाहरणार्थ मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि कोई भी वस्तु जो बड़ा रूप धारण करती है, वह ऐसा रूप छोटी होने के बाद ही पा सकती है।"

"हां, ठीक है।"

'और जो वस्तु छोटा रूप धारण करती है, वह कभी बडी रही होगी और फिर जाकर उसने छोटा रूप धारण किया होगा।"

'हा।'

'इसी प्रकार शक्तिहीन बलवान् स तथा तेज मन्द गति वाले स उत्पन्न होता है।'

'बिलकुल ठीक है।'

और निकृष्ट श्रेष्ठतर से तथा अधिक न्याय अधिक अन्याय से।"

'निस्सन्देह।'

'क्या यह सभी विपर्ययो के बारे म ठीक है ? और क्या हम इस बात को भली भाति मानते है कि वे सभी अपने विपर्ययो से उत्पन्न होते हैं ?"

हा, क्यो नही।"

'और समस्त वस्तुओ के इस व्यापक विरोध म क्या दो एसे मध्यवर्ती क्रम नही जो सदैव चलते रहते ह। एक विपयय म दूसरे की ओर और फिर वापस। इस प्रकार जहा एक ज्यादा और दूसरा कम हो वहा बढोतरी तथा घटोतरी का एक मध्यवर्ती क्रम भी उपस्थित होगा। जो पनपता रहता है उसको बढता हुआ कहते ह ‍ र जो हीन होता रहता है उसको घटता हुआ।

'हा" उसने कहा।

और भी अन्य व्यवहार है जैसे बटना मिश्रित होना ठण्डा होना तथा गम होना जिनम वैसे ही एक दूसरे के अन्दर बाहर होते रहने का क्रम उपस्थित है। यही बात समस्त विपर्ययो के बारे म ठीक है हालाकि इस बात को सदैव शब्दो द्वारा व्यक्त नही किया जाता। वे एक दूसरे स उत्पन्न होते ह और उनम एक दूसरे के बीच एक प्रकार की गति अथवा क्रम-सा बन्धा रहता है ‍ ठीक है न ?'

'बिलकुल ठीक है' उसने उत्तर दिया ?

'तो क्या जीवन का कोई विपर्यय नही जैसे निद्रा का जागरण है ?'

होना चाहिए।'

'वह क्या है ?

मृत्यु, उसने उत्तर दिया।

यदि य एक-दूसरे के विपर्यय हैं तो ये एक ‍ सरे से उत्पन्न भी होते हैं ‍ र इनके भी दो मध्यवर्ती क्रम होंगे ?"

निस्सन्देह होने चाहिए।"

"तो लो', सुकरात ने कहा, 'जिन विपर्ययो की बात मैंने की है उनम

स एक जोड़ी का विश्लेषण मैं करूंगा और इसके मध्यवर्ती क्रमों का भी, फिर तुम मेरे लिए दूसरी जोड़ी का करना। उस जोड़ी में एक को मैंने निद्रा कहा और दूसरे को जागरण। निद्रा की स्थिति जागरण के विपरीत है और निद्रा से जागरण उत्पन्न होता है तथा जागरण से ही निद्रा। एक स्थिति में उत्पत्ति के क्रम को सो जाना और दूसरी में जागना कहा जाएगा। क्यों ठीक है?'

"मैं बिलकुल सहमत हूं।"

"तो फिर जरा तुम मेरे लिए मृत्यु और जीवन का भी इसी प्रकार विश्लेषण करो। क्या मृत्यु जीवन के विपरीत नहीं?"

"हां।'

"और उनकी उत्पत्ति एक-दूसरे से होती है?"

"हां।"

'जीव से कौन-सी वस्तु उत्पन्न होती है?"

"मृतक।"

"और मरी हुई वस्तु से?"

'उत्तर में मैं केवल 'जीव' ही कह सकता हूं।

इस प्रकार हे सेबेस! 'जीव' चाहे वह व्यक्ति-स्वरूप हो अथवा वस्तु-स्वरूप, मृत से ही उत्पन्न होता है?"

'यह तो स्पष्ट ही है", उसने उत्तर दिया।

'फिर हम कह सकते हैं कि हमारी आत्माएं परलोक में हुआ करती हैं।'

'हां ठीक है।"

'और इन क्रमों या उत्पत्तियों में से एक प्रत्यक्ष है, क्योंकि मृत्यु का क्रम तो निश्चय ही प्रत्यक्ष है।"

'निस्सन्देह।"

'तो फि[illegible]

क्रम को [illegible] ?

क्या हम [illegible] समान रूप से एक उत्पत्ति क्रम का आधार नहीं मानना चाहिए?"

'अवश्य मानना चाहिए।"

"वह क्रम क्या हो सकता है?"

'पुनर्जन्म।"

"और पुनर्जन्म यदि यह होता हो तो मृत का इस लोक में उत्पन्न होना

ही तो है ?"

"बिलकुल ठीक है।"

"तो यह एक नवीन तर्क-क्रम है, जिसके आधार पर हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि जीव मृत से उत्पन्न होता है। ठीक वैसे ही जैसे कि मृत जीव से प्राप्त होता है और यदि यह ठीक हो, तो यह इस बात का निश्चित प्रमाण भी है कि मरे हुओं की आत्माएं किसी ऐसे स्थान पर रहती हैं, जहां से कि वे पुन बाहर आती हैं।"

'हां सुकरात, आप ठीक कहते हैं। हमारी पहली मान्यताओं के अनुसार अनिवार्य रूप से यही परिणाम सिद्ध होता है।"

"और केबेस, हमारी वे मान्यताएं निराधार नहीं थीं। इस बात को मेरे विचारानुसार ऐसे सिद्ध किया जा सकता है। यदि उत्पत्ति केवल एक सीधी रेखा के अनुरूप होती और प्रकृति में क्षति-पूर्ति का सिद्धान्त अथवा वृत्ताकारी प्रचलन न होता, तत्वों का अपने विपर्ययों से जुड़ाव या अलगाव न होता तो तुम जानते ही हो कि सभी वस्तुएं अन्त में एकरूप होकर एकाकार की स्थिति को प्राप्त हो जातीं और आगे उनकी उत्पत्ति नहीं होती।"

'आपकी बातों का तात्पर्य ?" उसने पूछा।

"बस, एक सीधी सी बात है। मैं इसे नींद के उदाहरण द्वारा स्पष्ट करूंगा। तुम जानते ही हो कि यदि नींद और जागरण में बारी-बारी से पक्षान्तर न होता तो नींद में डूबे हुए एनद्युमियॉन" की कहानी का अन्त में कोई अभिप्राय न निकलता, क्योंकि अन्य वस्तुओं के निद्रा-ग्रस्त होने के बाद उसको उन अन्य वस्तुओं से पृथक् न समझा जाता और यदि पदार्थों का विभजन नहीं, बल्कि केवल मिश्रण ही होता रहता, तो अनक्सगोरस' द्वारा कल्पित वह अव्यवस्थित पिंड" फिर से अपना रूप धारण कर लेता। इसी प्रकार हे प्रिय केबेस। यदि सारी जीवित वस्तुएं मर जातीं और मरने के बाद मृत दशा में ही रहतीं, अत पुनर्जन्म न लेतीं, तो अन्त में समस्त वस्तुएं मर जातीं और एक भी जीवित वस्तु शेष न रह पाती और कोई परिणाम निकलता क्या ? क्योंकि यदि जीवित वस्तुएं किन्हीं अन्य वस्तुओं से उत्पन्न होतीं और वे वस्तुएं भी मर जातीं तो क्या अन्त में सभी वस्तुएं मृत्यु-ग्रस्त नहीं होंगी ?"

"और तो कोई रास्ता नहीं दीखता। सुकरात, मुझे आपका तर्क बिलकुल ठीक लगता है", केबेस ने कहा।

उसने कहा, हां, "केबेस, यह तो है ही और मेरे मतानुसार होना भी

चाहिए। हम इन मान्यताओं को स्वीकृत करने में वहके नहीं हैं, अपितु मुझे पूरा विश्वास है कि पुनर्जन्म सचमुच हुआ करता है। मृतकों से ही जीवों की उत्पत्ति होती है। मृतकों की आत्माओं का अस्तित्व होता है और यह कि पुण्यात्मा की गति पापात्मा से अच्छी होती है।"

इस पर सेबेस ने कहा, "सुकरात ! यदि आपके प्रिय सिद्धान्त कि 'ज्ञान' केवल 'स्मरण' है, को ठीक मानें तो अनिवार्य रूप से पूर्वजन्म का होना सिद्ध होता है, जिसमे हमने वह सीखा जिसका स्मरण अब ज्ञान का रूप धारण करता है, परन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है, जबकि हमारी आत्मा मनुष्य शरीर धारण करने से पहले किसी स्थान पर रही हो, इस प्रकार यह आत्मा की अमरता का दूसरा प्रमाण है।"

इधर सिम्मिअस बीच में बोल उठा, 'परन्तु सबेस, मुझे यह तो बताओ कि इस 'स्मरण' के सिद्धान्त के पक्ष मे कौन से प्रमाण हैं। ऐसा लगता है कि मुझे वे इस समय याद नहीं।"

सेबेस ने कहा कि प्रश्नों द्वारा इसका एक उत्तम प्रमाण प्राप्त होता है। यदि तुम किसी से ढग से प्रश्न पूछते हो, तो वह ठीक-ठीक उत्तर देगा, परन्तु जब तक उसे ज्ञान तथा तर्कशीलता का पहले से ही बोध न हो, तो वह ऐसा कैसे कर सकेगा ? और यदि उसको एक रेखाचित्र अथवा वैसी ही किसी दूसरी वस्तु के पास ले जायें, तो यही बात ज्यादा स्पष्ट रूप से सिद्ध होगी।

अब सुकरात ने कहा, "परन्तु सिम्मिअस, यदि तुम्हें अब भी विश्वास नहीं, तो यदि हम इसी बात को दूसरे ढग से परख लें, तो क्या तुम मेरे साथ सहमत हो जाओगे ? कहने का अभिप्राय यह है कि क्या अब भी तुम्हें इस बात पर सन्देह है कि 'ज्ञान' 'स्मरण' ही है ?"

"मुझे सन्देह तो कोई नहीं", सिम्मिअस ने कहा, "परन्तु मैं इस 'स्मरण के सिद्धान्त' का स्मरण करना चाहता हू और सेबेस के कहने से मुझे अब कुछ-कुछ याद आने लगा है, कुछ-कुछ समझने भी लगा हू, परन्तु मैं फिर भी सुनना चाहता हू कि आप क्या कहने वाले थे।"

उसने उत्तर दिया, मैं यह कहता—यदि मेरा मत ठीक हो, तो हमे यह मानना ही पड़ेगा कि मनुष्य जिस वस्तु का स्मरण करता है वह निश्चित रूप से पहले ही उसकी जानी-पहचानी होती है।

"बिलकुल ठीक है।"

"और इस 'ज्ञान' अथवा 'स्मरण' की प्रकृति कैसी है ? पूछने का तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति देखकर, सुनकर अथवा किसी अन्य ढग से

किसी वस्तु को जानता है, पहचानता है, केवल उसी वस्तु को नहीं पहचानता, बल्कि उसके साथ साथ वह किसी अन्य वस्तु की अवधारणा भी प्राप्त करता है, जोकि उसी ज्ञान का विषय न होकर किसी अन्य ज्ञान का विषय होती है, तो उसे इस अन्य वस्तु का स्मरण करते रहना उचित होगा कि नहीं ?"

"आपका आशय ?"

"मेरे कहने का आशय क्या है ? यह मैं एक भिन्न उदाहरण से समझाता हू। एक वीणा का ज्ञान होना, किसी व्यक्ति का ज्ञान होना तो नहीं होता ?"

"नही।"

"परन्तु फिर भी जब एक प्रेमी अपनी प्रेमिका द्वारा प्रयोग किए जाने वाले वस्त्र, वीणा अथवा अन्य किसी वस्तु को पहचानता है तो उसकी भावनाए किस प्रकार की होती हैं ? क्या वे वीणा को पहचानकर अपने मन मे उसकी स्वामिनी युवती की एक काल्पनिक आकृति नहीं बनाते ? यही स्मरण है। इसी प्रकार सिम्मिअस को देखकर सेबेस की याद आ सकती है। और इसी तथ्य के असख्य उदाहरण मिल सकते हैं।"

"असख्य, निस्सन्देह", सिम्मिअस ने उत्तर दिया।

"और सामान्य रूप से समय तथा असावधानी के कारण पहले से ही भूली हुई बातो को पुन प्राप्त करने की विधि को ही 'स्मरण' कहते हैं।"

"बिलकुल ठीक है, उसने कहा।"

"हा एक मकान अथवा वीणा का चित्र देखकर भी तुम्हे किसी व्यक्ति की याद आ सकती है कि नहीं ? सिम्मिअस के चित्र से हम सेबेस की याद आ सकती है।"

"ठीक है।"

"या हमें स्वय सिम्मिअस की भी याद आ सकती है ?"

"बिलकुल ठीक है।"

"इन सभी दशाओ म 'स्मरण' का आधार समान तथा असमान दोनो वस्तुए हो सकती हैं ?"

"हो सकती है।"

"और जब 'स्मृति' समान वस्तुओ से उद्धृत की जाती है, तो एक दूसरा निमित्त भी निश्चय ही प्रकट होगा। वह यह कि कही यह समानता किसी सीमा तक स्मरण की हुई वस्तु से किसी रूप मे आगे या पीछे तो नही ?"

"बिलकुल ठीक है", उसने कहा।

"जरा और आगे चलें और देखें कि समानता जैसी किसी वस्तु का होना निश्चित हो सकता है। लकडी या लोहे के एक टुकडे की दूसरे टुकडे के साथ समानता की बात नही करता हू, बल्कि इससे उत्तम अर्थात् पूर्ण साम्य की। क्या ऐसी कोई वस्तु हो सकती है ?"

'हा', सिम्मिअस ने उत्तर दिया, "हो सकती है और जीवन को साक्षी रखकर हम इसे शपथपूर्वक भी कह सकते हैं।"

"क्या हमें इस सारभूत तत्त्व की प्रकृति का ज्ञान है ?"

'बिलकुल है", उसने कहा।

"और यह ज्ञान हमने कहा से पाया ? क्या हमने भौतिक पदार्थों की जैसे लकडी तथा पत्थर के टुकडो की समानता को देखकर इससे भिन्न एक अन्य समानता के विचार नहीं बटोरे ? क्योकि तुम यह तो मानते ही हो कि इनमे कुछ-न-कुछ अन्तर जरूर है या इसी बात को यो तोलो, क्या लकडी अथवा पत्थर के वही टुकडे कभी समान और कभी असमान नहीं दीखते ?"

"यह तो सर्वथा निश्चित है।"

'परन्तु क्या वास्तविक रूप मे समान वस्तुए कभी असमान होती हैं ? या क्या समानता तथा असमानता की धारणा एक ही है ?"

'असम्भव, सुकरात।'

'तो यह तथाकथित समान वस्तुए तथा समानता की धारणा एक ही बात नहीं ?"

'बिलकुल नही, जहा तक मैं कह सकता हू।"

'परन्तु फिर भी इन समान वस्तुओं से, हालाकि वे समानता की धारणा से भिन्न हैं, तुम्हें उस धारणा का ज्ञान प्राप्त हुआ, तुमने उसको समझा ?"

"हा, है।"

"और यह धारणा उनके सदृश अथवा उनसे भिन्न हो सकती है ?"

"हां।"

'परन्तु इससे कोई अन्तर नहीं पडता। जब कभी एक वस्तु को देखकर तुम्हे दूसरी का विचार आता है चाहे वह उस जैसी हो या न हो, तो निश्चय ही स्मरण' का क्रम गतिशील होना चाहिए ?"

'बिलकुल ठीक है।"

'परन्तु लकडी तथा पत्थर के समान विभागों तथा अन्य भौतिक समानताओ के बारे मे तुम्हारे क्या विचार हैं ? और उनसे क्या प्रतीत होता है ? क्या वे आपस म पूर्ण साम्य की भांति ही समान है या इस पूर्ण

साम्य से अंशत कुछ-कुछ मेल पाते हैं ?"

"हां, बहुत ही ज्यादा क्षीण रूप से", उसने कहा।

"हमें यह भी मानना चाहिए कि जब मैं अथवा अन्य कोई व्यक्ति किसी वस्तु को देखकर यह कहे कि वह वस्तु कुछ और बनने का लक्ष्य बांधे बैठी है, परन्तु अपनी त्रुटियों के कारण वह लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाती, अत उस लक्ष्य से घटिया है, तो इस प्रकार बोलने वाले को उस लक्ष्य का पहले से ही ज्ञान होना चाहिए, जिसके समान होने पर भी वह वस्तु उससे घटकर है।"

"निस्सन्देह।"

"और क्या समान वस्तुओं तथा पूर्ण साम्य की बातों के प्रति हमारी भी यही स्थिति रही है कि नहीं ?"

"बिलकुल ऐसी ही रही है।"

"तो हमने सर्वप्रथम समान भौतिक पदार्थों को देखने से पूर्व ही समानता के स्वरूप को जाना होगा। तभी हमने सोचा कि यह सभी तथाकथित समान वस्तुएं पूर्ण साम्य की प्राप्ति के लिए सङ्घर्ष तो करती हैं, परन्तु इनमें कमी रह जाती है ?"

"सर्वथा स्पष्ट है।"

"और हम यह भी समझते हैं कि पूर्ण साम्य केवल दृष्टि अथवा स्पर्श या अन्य किसी ज्ञानेन्द्रिय के माध्यम से ही, इस सम्बन्ध में सभी ज्ञानेन्द्रियां एक समान ही हैं, जाना गया है और केवल इनके द्वारा ही जाना जा सकता है।"

"हां सुकरात, तर्क के अनुसार एक ज्ञानेन्द्रिय दूसरी के समान ही है।"

"इस प्रकार ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही यह ज्ञान प्राप्त होता है कि समस्त सचेत वस्तुएं उस पूर्ण साम्य को अपना लक्ष्य बनाती हैं, जिसकी तुलना में वे बहुत ही हलकी पड़ती हैं ?"

"हां।"

"तो देखने-सुनने या किसी अन्य ढंग से समझना आरम्भ करने से पहले ही हमें पूर्ण साम्य का ज्ञान हो चुका होना चाहिए, नहीं तो हम ज्ञानेन्द्रियों द्वारा समझी गई समान वस्तुओं के लिए इस पूर्ण साम्य को मापदण्ड के रूप में प्रयोग न करते। सभी वस्तुएं उसी को अपना लक्ष्य बनाती हैं और सभी उसी से हलकी पड़ती हैं।"

"पिछली बातों से केवल यही परिणाम निकाला जा सकता है।"

"और क्या उत्पन्न होते ही हमने देखा नहीं, सुना नहीं तथा अन्य

ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग नहीं किया ?"

"निश्चय ही किया।"

"तो हमें उस समानता का ज्ञान उससे पूर्व कभी प्राप्त हो चुका होना चाहिए ?"

"हां।"

"अर्थात् हमारे उत्पन्न होने से पहले। मेरा तो यही विचार है।"

"यह विचार ठीक है।"

"और यदि यह ज्ञान हमने उत्पन्न होने से पहले ही प्राप्त किया और इसका प्रयोग जानते हुए हम उत्पन्न हुए, तो हम अपनी उत्पत्ति के समय तथा उससे पूर्व भी केवल समान बड़े अथवा छोटे के विचारों को ही नहीं, बल्कि सभी अन्य विचारों को भी जानते थे, क्योंकि हम केवल समानता की ही बात नहीं करते, बल्कि सुन्दरता, सौजन्य, न्याय, पवित्रता और उन समस्त चीज़ों की, जिनको हम तार्किक क्रम में, प्रश्न पूछते तथा उनका उत्तर देते समय, 'सार' का नाम देते हैं। इस प्रकार हम निश्चयपूर्वक यह सकते हैं कि इन सभी चीज़ों का ज्ञान हमने अपनी उत्पत्ति से पूर्व ही प्राप्त किया ?"

"हां, कह सकते हैं।"

"परन्तु यदि इस ज्ञान को प्राप्त करने के बाद हम प्रत्येक क्षेत्र में प्राप्त किये गए ज्ञान को न भूलते, तो अवश्य ही हम सदैव जीवन में ज्ञानियों के रूप में प्रवेश करते और आजीवन निरन्तर ज्ञानवान् बने रहते, क्योंकि ज्ञान की प्राप्ति के उपरांत उसे स्थिर रखना ही ज्ञान कहलाता है उसे भुला देना नहीं। क्यों, सिम्मिअस भूलना ज्ञान को खोना ही तो है न ?"

"सर्वथा सत्य है।"

"परन्तु यदि उस ज्ञान को, जो हमने अपनी उत्पत्ति से पूर्व प्राप्त किया, हम उत्पन्न होते समय खाते हैं और बाद में हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा उस पूर्ववर्ती ज्ञान को पुन प्राप्त करते हैं, तो यह रीति जिसको हम सीखना कहते हैं, वास्तव में हमारे प्राकृतिक ज्ञान को पुन प्राप्त करना नहीं, तो और क्या है ? और क्या 'स्मरण' इसका उपयुक्त नाम न होगा ?"

"बिलकुल ठीक है।"

"इतना तो स्पष्ट है कि जब हम देखकर, सुनकर या किसी अन्य ज्ञानेन्द्रिय से किसी वस्तु को समझते हैं, तो इस प्रत्यक्षीकरण से हम उसी वस्तु से सम्बन्धित समान अथवा असमान वस्तु का विचार प्राप्त करने के

योग्य वन जाते है, जबकि वास्तव मे हम उसको भूल चुके होते है। जैसा कि मैंने कहा है, इससे दो पक्षान्तरो म से एक की सभावना सिद्ध होती है, या तो यह ज्ञान हमे उत्पन्न होते समय था और आजीवन हम ज्ञानवान् रहे या उत्पन्न होने के उपरात केवल सीखने वालो को ही इसकी याद रहती है और यह सीखना वास्तव मे स्मरण करना ही है।"

— [illegible] यह तो ठीक है।"

को प्रथम स्थान
उत्पत्ति म पहो
दे
जानी-पहचानी वातो का ही स्मरण किया ?"

"मैं अभी इसी क्षण कुछ निर्णय नही कर सकता।"

"कुछ भी हो, कम से कम इतना तो निर्णय कर सकते हो कि ज्ञानवान् अपने ज्ञान का विवरण दे सकता है कि नही ? क्यो, क्या कहते हो ?"

"अवश्य दे सकता है।"

"परन्तु तुम्हारे मतानुसार क्या प्रत्येक व्यक्ति इन्ही वातो का विवरण देने योग्य है, जिनकी चर्चा हम कर रहे हैं ?"

"काश, कि वे इस योग्य होते ! लेकिन सुकरात, मुझे इस वात का डर है कि कल इसी समय ऐसा कोई भी जीवित प्राणी नही मिलेगा, जोकि इन वातो का उपयुक्त विवरण दे सके।"

"तो सिम्मिअस, तुम्हारा यही विचार है न कि सभी व्यक्ति इन वातो को नही जानते ?"

"निस्सन्देह, नहीं जानते।"

"अब वे उन बातो का स्मरण करने लगे हैं, जो उन्होने पहले सीखी थी ?"

"निश्चय ही ठीक है।"

"परन्तु हमारी आत्माओ ने यह ज्ञान कब प्राप्त किया ? मनुष्य रूप धारण करने के उपरान्त तो नही ?"

"बिलकुल नहीं।"

"अर्थात् उससे पहले ?"

"हा।"

"सिम्मिअस तब तो मनुष्य रूप धारण करने से पहले हमारी आत्माओं का भी शरीरो से अलग अपना निजी अस्तित्व रहा होगा और उनमे बुद्धि भी रही होगी।"

"निस्सन्देह ऐसा ही होगा। नहीं तो मानना पडेगा कि ये विचार हमे

उत्पत्ति के समय ही प्राप्त हुए, क्योंकि अन्य कोई समय शेष बचा नहीं।"

"ठीक है मित्र! परन्तु यदि ऐसा होता, तो हमने उनको कब खोया? क्योंकि हम यह तो मान चुके हैं कि उत्पत्ति के समय वे हमारे साथ न थे, तो हम उनको पाते ही खो देते हैं क्या? यदि ऐसा नहीं, तो फिर किस समय खोते हैं?"

"नहीं, सुकरात, मैं समझ गया कि मैं बिना सोचे-समझे ही मूर्खतापूर्ण बात कह रहा था।"

"तो सिम्मियस, जैसे कि हम सदैव चर्चा करते रहे हैं, यदि कोई परम सौन्दर्य हो, सौजन्य हो तथा समस्त वस्तुओं का एक परमसार हो और यदि हम अपने समस्त इन्द्रिय ज्ञान को उसका हवाला दें, जिसके अस्तित्व का हमारे पूर्वजन्म में होना अब सिद्ध हो चुका है और उसी के साथ उसकी तुलना करने पर उपर्युक्त धारणा को पूर्ववर्ती तथा अपनी जन्मजात सम्पत्ति पायें, तो कहना न होगा कि हमारी आत्माएं अवश्य ही पूर्ववर्ती [illegible]

[illegible]

और यदि तब विचार न थे, तो आत्माएं भी न थीं।"

"हां, सुकरात! मैं पूर्णरूप से मानता हूं कि इन दोनों का प्रयोजन हूबहू एक जैसा है और यह तर्क सफलतापूर्वक इस विचार-बिन्दु पर आ सकता है कि जन्म से पूर्व आत्मा के अस्तित्व को उस सार के अस्तित्व से अलग नहीं किया जा सकता, जिसकी आप चर्चा करते हैं, क्योंकि मेरे विचारानुसार और कोई वस्तु इतने प्रत्यक्ष रूप से अत्यन्त वास्तविक तथा नित्य अस्तित्व की नहीं, जितना कि यह सौंदर्य, सौजन्य तथा वे अन्य विचार जिनकी चर्चा आप अभी कर रहे थे। मैं इस प्रमाण से सन्तुष्ट हूं।"

"परन्तु क्या सेबेस भी समान रूप से सन्तुष्ट है? मुझे तो उसे भी सन्तुष्ट करना चाहिए।"

सिम्मियस ने कहा, "मेरा विचार है कि सेबेस भी सन्तुष्ट हुआ है। हालांकि उस जैसा शक्की शायद ही कोई हो, फिर भी मुझे आशा है कि जन्म से पहले आत्मा के अस्तित्व को वह अब सर्वथा मान चुका है, परन्तु मृत्यु के बाद भी आत्मा रहती है, यह बात अभी मेरी निष्ठा के लिए भी अप्रमाणित ही है। मुझे स्वयं उस बहुमत से छुटकारा नहीं मिलता जिसकी चर्चा सेबेस कर रहा था। हो न हो मनुष्य की मृत्यु के बाद आत्मा बिखर जाती है और हो सकता है वहीं उसका अन्त भी हो। मान लिया कि यह

कहीं और जन्मी, किन्हीं भिन्न प्रकार के तत्वों से बनी और शरीर मे प्रवेश करने से पूर्व भी उसका अस्तित्व था। क्या ऐसा नही हो सकता कि शरीर में प्रवेश कर और फिर वहां से निकलकर वह स्वयं नष्ट होकर अन्त-गति प्राप्त कर ?'

"बिलकुल ठीक है" सेबेस ने कहा, "लगभग आधा साध्य सिद्ध हो चुका है अर्थात हमारी आत्माओं का अस्तित्व हमारे जन्म से पूर्व भी था। दूसरा आधा भाग अर्थात आत्मा का अस्तित्व मृत्यु के उपरांत भी जन्म से पूर्व की भांति रहेगा, अभी सिद्ध करना बाकी है और इसे सिद्ध करना होगा। तभी जाकर प्रतिपादन पूर्ण होगा।"

अब सुकरात ने कहा, परन्तु सिम्मिअस और सेबेस, वह प्रमाण तो पहले ही दिया जा चुका है। जरा उन दो तर्कों की संधि तो करो। एक जो तुमने अभी अभी स्वीकार किया है और दूसरा वह पहले वाला अर्थात् हर जीवित वस्तु मृत वस्तु से ही उत्पन्न होती है क्योंकि यदि आत्मा जन्म से पहले भी होती है और पुन जीव का रूप धारण करने तथा उत्पन्न होने के लिए यह केवल मृत्यु तथा मृतक से ही उत्पन्न हो सकती है, तो क्या इसे मृत्यु के उपरांत भी नितांत नहीं रहना चाहिए, क्योंकि इसे पुन जो उत्पन्न होना है ? निश्चय ही जो प्रमाण तुमको चाहिए, पहले का ही प्रस्तुत किया हुआ है। फिर भी मुझे लगता है कि तुम और सिम्मिअस इस तर्क की गहराई को जरा और भेदना चाहते हो। बच्चों की भांति तुम इस भय से ग्रस्त हो कि शरीर को त्यागने पर आत्मा सचमुच ही वायु द्वारा दूर फेंकी जाएगी, बिखेर दी जाएगी। विशेषकर यदि कोई व्यक्ति शान्त वातावरण मे नहीं, बल्कि किसी बड़े तूफान में मरे।"

अब सेबेस ने मुस्कराकर उत्तर दिया, "सुकरात, तब आप हमारे भय को अपने तर्कों द्वारा भगा ही दीजिए, परन्तु, फिर भी विशिष्ट रूप से हम पर ऐसा कोई भय सवार नहीं। हां, ऐसा समझो, हममे एक शिशुरूप है, जिसके लिए मृत्यु एक प्रकार का भूत है। हमें उसे भी समझाना होगा कि अंधेरे में अकेला होने पर डरना नहीं चाहिए।'

सुकरात ने कहा, "बस भय के दूर होने तक मन्त्र फूकने वाले से प्रति-दिन मन्त्र फुकवाते रहो।"

"आपके जाने के उपरांत हे सुकरात ! हमे अपने भय-निवारण के लिए एक अच्छा मन्त्र फूकने वाला ही कहा मिलेगा ?"

उसने उत्तर दिया, 'सेबेस यूनान एक बहुत ही बड़ा स्थान है। इसमें बहुत-सी पुण्यात्माएं रहती हैं और असभ्य जातियों की भी इसमे कोई

कमी नहीं। इन सबमे उसको दूर-दूर तक ढूढते फिरना कष्ट अथवा धन की चिन्ता न करना, क्योकि धन को खर्च करने का इससे उत्तम ढग और है ही नहीं। स्वयं आपस मे भी उसको ढूढते रहना, क्योकि तुम्हे खोज करने के लिए अपने से अधिक योग्य व्यक्ति नही मिल सकते।"

"खोज अवश्य की जाएगी," सेबेस ने कहा, "हा, यदि बुरा न मानो, तो तर्क को वहा से पुन. हाथ मे लेते हैं, जहा से हम भटक गए थे।"

"अवश्य," सुकरात ने कहा, "मुझे और क्या चाहिए ?"

"बहुत अच्छी बात है।"

इस पर सुकरात ने कहा, "क्या वैसी कल्पना करते समय हमे स्वय से यह नहीं पूछना चाहिए कि जिस वस्तु का बिखर जाना सम्भव है, जिसके प्रति हमे भय है, वह वस्तु क्या होगी ? और वह कौन-सी वस्तु है जिसके प्रति हमे भय नही है ? और फिर आगे चलकर हमे यह खोजना होगा कि जो वस्तु बिखर जाती है, उसकी प्रकृति आत्मा जैसी है कि नही। हमारी आशाए, हमारे भय जैसे स्वय ही हमारी आत्माओ को इन प्रश्नो का उत्तर प्रस्तुत करेंगे।"

"सर्वथा सत्य है।"

"अच्छा, एक यौगिक या मिश्रण जो मिश्रित हो सकता है, प्राकृतिक रूप से वैसे ही खण्डित होने के योग्य भी माना जा सकता है, परन्तु यदि कोई वस्तु अखण्डनीय हो भी, तो वह केवल वही वस्तु हो सकती है, जिसका यौगिक नही बनता।"

"हां, मेरा भी ऐसा ही विचार बन रहा है," सेबेस ने कहा।

"और जिस वस्तु का यौगिक नही बनता, सदैव एक-सी तथा अपरिवर्तनशील मानी जा सकती है, जबकि यौगिक सदैव परिवर्तनशील और कभी भी एक-सा नही रहता।"

"मैं सहमत हू।"

"अब जरा उस पिछले वाद-विवाद का ताना पकडो। क्या वह विचार अथवा सार, जिसको हम तार्किक क्रम मे सार अथवा वास्तविक सता के नाम से सम्बोधित करते हैं, भले ही वह सार साम्य का हो, सौन्दर्य का हो या किसी अन्य वस्तु का, हा, तो मैं पूछता हू कि ये जो सार हैं क्या इनमे कभी किसी भी स्तर का परिवर्तन आने की सम्भावना है, या कि वे सभी एक ही साधारण आत्मविद्यमान तथा अटल रूप मे किसी भी समय या किसी भी दशा मे परिवर्तन को अङ्गीकार न करते हुए सदैव अपरिवर्तनशील रहते हैं ?"

"सुकरात, वे तो सदा एक से ही होने चाहिए," सेबेस ने उत्तर दिया।

"और अन्य सुन्दर वस्तुओं के बारे में तुम्हारे क्या विचार हैं ? चाहे वे मनुष्य हों, घोड़े हों, वस्त्र हों अथवा ऐसे ही नामों की अन्य वस्तुएं हों, जिनको समान अथवा सुन्दर माना जाए, क्या ऐसी सभी वस्तुएं सदैव एक जैसी रहती हैं अपरिवर्तनशील होती हैं या कि इससे उलटी प्रकृति की ? क्या उनका ऐसा वर्णन तथ्य-पूर्ण न होगा कि वे लगभग सदा ही बदलती रहती हैं और मुश्किल से स्वयं अपने-आप में अथवा एक दूसरे के प्रति समान रहती हैं ?'

'हां, दूसरी बात ठीक है," सेबेस ने कहा, 'वे सदैव परिवर्तन की स्थिति में रहती हैं।"

उनको तुम छू सकते हो, देख सकते हो, और इन्द्रियों द्वारा उनका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु निर्विकार वस्तु का ज्ञान केवल चित्त द्वारा ही होता है, वह निराकार और अदृश्य होती है।"

"यह बात तो सर्वथा सत्य है।"

"अच्छा," सुकरात आगे बोलता गया, 'अब हम दो प्रकार की सत्ताएं मान सकते हैं एक दृश्य और दूसरी अदृश्य।"

'ठीक है। ऐसा ही मान लो।"

"जो दृश्य है वह परिवर्तनशील है और जो अदृश्य है वह निर्विकार।"

"यह भी मान लिया।"

"और क्या हमारे अस्तित्व का एक अंश शरीर और दूसरा अंश आत्मा नहीं है ?"

'हां, है तो।"

"और यह शरीर किस वर्ग के सदृश तथा समकक्ष है ?"

यह तो स्पष्ट ही है कि शरीर 'दृश्य' के समकक्ष है।"

'और हां आत्मा दृश्य है अथवा अदृश्य ?"

"सुकरात, मानव के लिए तो यह अदृश्य ही है।"

"हमारे 'दृश्य' और 'अदृश्य' से क्या अभिप्राय है ? यही न 'जिसको मानव देख सकता है' और 'जिसको वह देख नहीं सकता' ?'

"हां, मानव की आंख ही कसौटी है।"

'हां, तो फिर आत्मा दृश्य है अथवा अदृश्य ?"

"अदृश्य।'

'अलख ?"

हां।"

"अर्थात् आत्मा अलख के सदृश है और शरीर दृश्य के ?"

"हां, सुकरात, यह परिणाम तो स्पष्ट ही है।"

"और बहुत समय पहले हमने यह भी कहा है कि जब आत्मा शरीर को ज्ञान प्राप्ति का साधन बनाती है अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग करती है, (क्योंकि शरीर या ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ज्ञान को प्राप्त करना एक ही बात है) उस स्थिति में शरीर आत्मा को भी परिवर्तनशील बना छोड़ता है और वह परेशान होकर भटकता फिरता है। सारा ब्रह्माण्ड इसके चारों ओर घूमने-सा लगता है इसकी स्थिति एक मदोन्मत्त व्यक्ति की-सी होती है। हमने ऐसा कहा है कि नहीं ?'

'हां, कहा है।"

"परन्तु पुन: आपे में आने पर वह मनन करती है और फिर वह एक दूसरे ही क्षेत्र पवित्रता, नित्यता, अमरता तथा अपरिवर्तनशीलता अर्थात् अपने कुटुम्बियों के क्षेत्र को अपनाती है और सदा के लिए उनके साथ बिना किसी विघ्न अथवा वियोग के रहती है। तब इसकी सारी गलत मनोवृत्तियां छूट जाती हैं और निर्विकार के साथ समागम होने के कारण यह भी निर्विकार बनती है। क्या आत्मा की स्थिति को प्रज्ञान नहीं कहते ?"

' सुकरात, यह खूब कही और यह सत्य भी है।"

"अच्छा, इन दोनों तर्कों से क्या सिद्ध होता है ? आत्मा विशेष रूप से किस वर्ग के समकक्ष या सदृश दिखाई देती है ?"

"मेरे विचारानुसार इस तर्क का अनुकरण करने वाला कोई भी व्यक्ति यही कहेगा कि आत्मा विशिष्ट रूप से निर्विकार के सदृश है। मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति भी इससे इनकार नहीं कर सकता।"

"और शरीर विशिष्ट रूप से परिवर्तनशील के सदृश ?" सुकरात ने पूछा।

"हां।"

"अच्छा, अब इसी बात को दूसरी दृष्टि से देखो। जब आत्मा और शरीर का मेल हो जाता है, तो प्रकृति आत्मा को शासन करने और अधिकार रखने का आदेश देती है और शरीर को आज्ञापालन तथा सेवा करते या। अच्छा, अब इन दोनों कर्मों में से कौन-सा 'ईश्वरीय-तत्त्व' के सदृश है और कौन-सा 'नश्वर-तत्त्व' के ? क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि 'ईश्वरीय तत्त्व' स्वभाव से ही शासन करता है और 'नश्वर-तत्त्व' अपनी प्रकृति के कारण सदा ही सेवा पद पर रहता है ?"

"ठीक है।"

अपवित्र रही हों। गोचर तत्त्वों से लदे रहने के कारण ये दिखाई भी देती है। ऐसी आत्माएं अदृश्य लोक तथा परलोक से डरती हैं।'

"हां, यह तो बिलकुल सम्भव है।'

"निस्सन्देह सेबेस, ये आत्मायें बुरे लोगों की ही हो सकती हैं और इन्हें अपने पूर्व जीवन से किए गए कुकर्मों का दण्ड भुगतने हेतु ऐसे स्थानों में विचरण करने पर विवश होना पड़ता है। ये निरन्तर विचरण करती रहती हैं और अन्त में शरीर के प्रति अतिशय और अमिट उत्कण्ठा होने के कारण ये अन्य शरीर धारण करती हैं। ये दूसरे शरीर कैसे हों, यह तो उनके पूर्वजन्म की प्रकृतियों पर ही निर्भर हो सकता है।"

"कैसी प्रकृतियां ?"

"मेरे कहने का अभिप्राय यह है जो व्यक्ति बहुत खाने, शराब पीने और लम्पटता के आदी हों और इन बुराइयों को टालने का कभी विचार भी न करते हों, वे मरने के बाद गधों और इसी प्रकार के दूसरे पशुओं का शरीर धारण करते होंगे। तुम्हारी क्या राय है ?"

"मेरे विचारानुसार इसके सत्य होने की बहुत ही सम्भावना है।"

"और जो अन्याय, निर्दयता तथा हिंसा को अपनाते हैं, वे भेड़ियों, बाजों और चीलों का शरीर धारण करते होंगे और तो उनका हो ही क्या सकता है ?"

"निस्सन्देह, ऐसी प्रकृति का परिणाम यही होगा,' सेबेस ने कहा।

"इसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकृतियों और प्रवृत्तियों के अनुसार उनके लिए भिन्न-भिन्न स्थितियों को निर्दिष्ट करना कठिन नहीं होगा।"

"हां, कठिन नहीं होगा।'

"अच्छा, इनमें से कुछ औरों से अधिक प्रसन्न हैं और जिन्होंने संयम तथा न्याय जैसे साम्य तथा सामाजिक गुणों का अभ्यास किया हो—ये गुण दर्शन तथा चिंतन के बिना ही अभ्यास और मन लगाने से प्राप्त किये जाते हैं। तो हां, जिन्होंने इन गुणों का अभ्यास किया हो वे स्वयं अपने-आप तथा अपनी नयी अवस्था, दोनों में सबसे ज्यादा प्रसन्न रहते हैं।"

'वे सबसे अधिक प्रसन्न क्यों रहते हैं ?'

"क्योंकि वे अपने जैसे ही किसी भले तथा सामाजिक प्राणी का रूप धारण कर सकते हैं, जैसे मधुमक्खी का, चींटी या पुनः मनुष्य का। और हां, उनसे ही भले तथा शान्त मनुष्यों का उद्भव होता माना जा सकता है।"

"ऐसा भी सम्भव है।"

"जो दर्शन का अध्ययन नही करते और जो प्रस्थान के समय पूर्ण रूप से पवित्र न हो, उन्हें देवताओ के साथ उठने बैठने की आशा नही। केवल ज्ञान प्रेमी ही उनके सगीत का आनन्द ले सकते हैं। मेरे प्रिय सिम्मिअस और सेबेस, यही कारण है कि दर्शन के सच्चे उपासक शरीर की समस्त प्रवृत्तियो से निवृत रहते हैं। उनका विरोध करते हैं और स्वय को उनसे बचाये रखते हैं, क्योकि वे कुकर्मों द्वारा उपलब्ध मानहानि तथा कष्ट से बहुत ही डरते हैं। वे सम्मान और शक्ति की अभिलाषा रखने वालो, जगत तथा सम्पत्ति प्रेमियो की भाति अपने कुटुम्ब की तबाही अथवा दरिद्रता से नहीं डरते।"

'ऐसी बातें तो उनको शोभा ही नही देंगी," सेबस न कहा।

"बिलकुल नही," सुकरात ने उत्तर दिया, "यही कारण है कि जो केवल शरीर को सवारने तथा बनाने के लिए ही जीवित नही रहते, जिनको अपनी आत्मा की जरा भी चिन्ता हो, वे इन सभी बातो को त्याग देते हैं। वे अपना जीवन पथ पर अधो की भाति नही चलत और जब उन्हे दर्शन निर्मल बनाता है तथा बुराइयों से मुक्ति प्रदान करता दीखता है, तो वे इसके प्रभाव से झिझकना नही चाहते और उसीका अनुसरण करत हुए उसके पीछे हो लेते हैं।"

"सुकरात! हम आपकी यह बात नही समझे।'

"मैं समझाऊगा," उसने कहा, "ज्ञान के उपासक यह जानते हैं कि आत्मा और शरीर का सम्बन्ध बहुत ही नाजुक है और जब तक 'दर्शन' आत्मा को अपने आचल मे नही लेता, वह वास्तविक सत्ता को अपने भीतर और अपने आद्यन्त मे न देखकर उसे मानो जेल की खिडकियो से बाहर किसी दूर स्थान पर देखती है। वे यह भी जानते हैं कि आत्मा प्रत्येक प्रकार की अज्ञानता के दलदल मे लुढकती रहती है और अपनी प्रवृत्तियो के कारण स्वय ही अपने बधन का मुख्य कारण बनी रहती है। यह इसकी प्रथम स्थिति है, और फिर, जैसा कि मैंने कहा है और जैसा कि ज्ञान के भक्त जानते हैं 'दर्शन' इसके भयानक स्वकृत बधन को भापकर इसका स्वागत करता है, नम्रतापूर्वक उसको पुचकारता है और उसे मुक्त करने के लिए समझाता है कि आख, कान तथा अन्य ज्ञानेन्द्रिया अत्यन्त ही कपटी हैं। इसलिए उसे इनसे दूर रहना चाहिए और इनके प्रत्येक आवश्यक प्रयोग से परहेज करना चाहिए और अपने-आप को समटकर स्वय मे सगठित होना चाहिए। उस पवित्र सत्ता के प्रति अपने निजी शुद्ध अनुभव तथा अपने आप मे विश्वास उत्पन्न करना चाहिए और जो कुछ

उसे किसी अन्य साधन द्वारा ज्ञात हो अथवा परिवर्तनशील हो उनमें विश्वास न रखे, क्योंकि ऐसी वस्तुए दर्शन और स्पर्श के योग्य है, जबकि स्वय उसकी प्रकृति सुबोध होते हुए भी अदृश्य है। एक सच्चे दार्शनिक की आत्मा यही सोचती है कि उसे इस प्रकार मुक्ति प्राप्त करने से झिझकना नही चाहिए। इसलिए जितना भी उससे हो सके, वह सासारिक आनन्द, इच्छाओ, दुखों तथा भय से परहेज करती है। वह यह भी सोचती है कि मानव को असीम प्रसन्नता, दुख, भय तथा इच्छाओ के कारण कष्ट उठाने पडते हैं। कैसे कष्ट? केवल वही नही जिनका कि अदेशा हो सकता है अर्थात् स्वास्थ्य या सम्पत्ति की हानि, जिनको उसने अपनी प्रवृत्तियों को सन्तुष्ट करने के लिए वेदी पर चढाया हो, बल्कि वह कष्ट भी, वह बुराई भी, जो समस्त बुराइयों से भयकर तथा निकृष्ट है और जिसका उसे तनिक भी विचार नही आता।"

"वह बुराई क्या है, सुकरात ?" सेबेस ने पूछा।

'बुराई यह है कि जब प्रसन्नता अथवा दुख की भावना अत्यन्त ही तीव्र होती है, तो उस समय हर व्यक्ति की आत्मा यही कल्पना करती है कि उस तीव्र भावना से सम्बन्धित वस्तुए ही वास्तविक तथा शुद्ध हैं, जब कि ऐसी बात नही। ये वस्तुए वास्तव मे केवल दिखाई देने वाली ही है।"

"बिलकुल ठीक है।"

'और क्या यह वह स्थिति नही, जिसमे कि आत्मा पर शरीर की पकड अधिकतम शक्तिवान होती है?'

'ऐसा क्यो ?"

"क्योंकि प्रत्येक प्रसन्नता और दुख एक कील के समान है, जोकि आत्मा को शरीर के साथ जकडती तथा इसमें गाडती है। अन्त मे ऐसी आत्मा शरीर जैसी ही बन जाती है और शरीर द्वारा कोई वस्तु वास्तविक घोषित होने पर यह भी उसको वास्तविक मानती है। इस प्रकार शरीर से सहमत होकर, उसी के आनन्द को अपना आनन्द मानकर, आत्मा को विवशत उसी के स्वभाव तथा तरीके को अपनाना पडता है और प्रस्थान के समय उसका पवित्र होना सम्भव ही नही हो सकता। शरीर उसको सदैव ही दूषित रखता है। इसी कारण एक शरीर को छोडकर वह दूसरे शरीर म डूबती है। वहा पर उसके अकुर फूटते हैं, उसकी वृद्धि होती है और इस प्रकार स्वच्छ, पवित्र और ईश्वरीय तत्त्व के साथ इसका कभी वास्ता ही नही पड़ता।"

"बिलकुल ठीक है," सेबेस ने उत्तर दिया।

"और सेबेस, यही कारण है कि ज्ञान के सच्चे भक्त स्वभाव के शील-वन्त और बहादुर होते हैं, न कि उस कारण से जो कि संसार बताता है।"

'निश्चय ही नहीं।"

'बिलकुल नहीं। एक दार्शनिक की आत्मा और ही ढंग से सोचती है। वह दर्शन की सहायता से मुक्ति पाकर पुन विलास तथा दुःख की लपेट में नहीं आना चाहती। वह कर्म को करने के बाद उसको पुन असम्पन्न हुआ नहीं देखना चाहती, वह अपना जाल बुनने रहना चाहती है उसे सुलझाना नहीं। वह उद्वेगों को शान्त करती है, ज्ञान के पथ पर चलती है और सत् तथा ईश्वरीय तत्त्व (जिसमें किसी राय की जरूरत नहीं) को दृष्टि में रखते हुए उसी ज्ञान के ध्यान में विलीन रहकर अपना विचार करती है। इस प्रकार वह जीवनकाल में जीवित रहना चाहती है और मृत्यु के बाद मानवीय त्रुटियों से छुटकारा पाकर अपने सदृश तथा समकक्ष कुटुम्बियों के पास जाने की आशा करती है। इसलिए सेबेस और सिम्मिअस, इस विचार से भयभीत होने में कोई तथ्य ही नहीं कि उपर्युक्त ढंग से विकसित हुई आत्मा शरीर से प्रस्थान करते समय हवाओं से छितरा सकती है अथवा छिन्न भिन्न हो सकती है और शून्य बनकर सम्पूर्ण रूप से नष्ट हो सकती है।

जब सुकरात यह कह चुका तो बहुत समय के लिए सभी चुप रहे। ऐसा लगा कि हममें से अन्य व्यक्तियों की भांति वह स्वयं इन बातों पर चिन्तन कर रहा हो। केवल सिम्मिअस और सेबेस आपस में कुछ बोले। यह देखते ही सुकरात ने उनसे पूछा, "इस दलील इस युक्ति के बारे में तुम्हारे क्या विचार हैं? कहीं इसमें कोई त्रुटि तो नहीं?" उसने स्वयं यह मान लिया कि यदि कोई इस विषय की पूर्ण रूप से छान बीन करना चाहे, तो बहुत-से ऐसे बिन्दु मिलेंगे, जिन पर मन में शंका उत्पन्न हो सकती है और जिनमें दोष पाया जा सकता है।" उसने उनसे फिर पूछा, "यदि तुम दोनों किसी दूसरे विषय की चर्चा कर रहे हो, तो मैं चुप रहूंगा। परन्तु यदि तुम्हारी इसी विषय पर शंकाएं बची रह गई हैं, तो अपने विचारों को साफ-साफ प्रकट करने में मत हिचकिचाओ। हम तुम्हारे किसी भी अधिक पुष्ट विचार को अपनाएंगे और यदि तुम यह जानते हो कि मैं किसी प्रकार लाभदायक सिद्ध हो सकता हूं, तो मुझे सहायक बनने का अवसर दो।"

सिम्मिअस ने कहा, "सुकरात मैं मानता हूं कि हमारे मन में शंकाएं उत्पन्न हुई और हम दोनों आप से प्रश्न पूछने के लिए एक दूसरे को उकसाते रहे हैं। हम उस प्रश्न का उत्तर चाहते तो हैं, परन्तु यह सोचकर कि

इस अवसर पर हमारा आग्रह कहीं दु खदायी सिद्ध न हो, हमने यह प्रश्न पूछना अच्छा न समझा।

इस पर सुकरात ने मुस्काते हुए उत्तर दिया, 'ओ सिम्मिअस, तुम कैसी बातें करते हो? यदि मैं तुम्हे यह विश्वास नहीं दिला सकता कि मेरी स्थिति इस समय मेरे जीवन के किसी अन्य क्षण से बुरी नही, तो मेरे लिए दूसरो को ही विश्वास दिलाना बिलकुल ही सम्भव नही। क्या तुम यह मानने को तैयार नहीं कि हसो की भाति मुझमें भी पूर्वाभास प्रकट करने की क्षमता है? क्योंकि आजीवन कलरव करने के बाद अन्त मे जब वे मृत्यु को अपने निकट आते देखते हैं तो वे और भी अधिक उद्वेग से गाते हैं जिसका कारण उनका यही विचार है कि अब वे तुरन्त ही पुन अपने स्वामी परमात्मा के पास जाने वाले हैं परन्तु मनुष्य जो स्वय मृत्यु से डरते हैं, कहते हैं कि हस अन्त मे विलाप करते हैं। ऐसा कहना हसो की निन्दा के [illegible] पीडा के समय [illegible]

इस बात को ठीक उसी प्रकार नहीं मानता, जिस प्रकार कि मैं हसो के बारे मे प्रचलित कथा को नही मानता) मेरा विचार यह है कि हस अपोलो के लिए पावन हैं, पवित्र हैं इसलिए उन्हे विलक्षण बुद्धि प्रदान हुई है। अत उन्हें परलोक की भली चीजो का पूर्वज्ञान हो जाता है और वे उस दिन (अन्तिम दिन) ऐसा सगीत छेडते हैं, ऐसी खुशी मनाते हैं, जैसी कि वे आजीवन कभी नहीं मनाते। मेरा विश्वास है कि मैं स्वय भी इसी देवता को अर्पण किया हुआ हसो के समान दास हू और मुझे भी अपने स्वामी ने विलक्षण बुद्धि प्रदान की है जो कि हसो की विलक्षणता से कुछ कम नहीं। इसीलिए मैं मरने पर हसो से कुछ कम खुशी मनाने को तैयार नही। अत यदि तुम्हारी झिझक केवल यही कारण है, तो कोई चिन्ता नही। बोलो, अथेन्स के ग्यारह दडाधीशो द्वारा दिए गए समय तक तुम अपनी इच्छानुसार कोई भी प्रश्न पूछ लो।"

"बहुत ही अच्छी बात है" सिम्मिअस ने कहा, "अब मैं आपको अपनी समस्या बताऊगा और सेबेस भी अपनी बताएगा। मैं यह अनुभव कर रहा हू (मुझे विश्वास है कि आप स्वय भी ऐसा महसूस करते होगे) कि इसी जन्म में ऐसे प्रश्नो का कोई निश्चित उत्तर पाना बहुत ही कठिन है या यों कहिए कि असम्भव नही है। फिर भी मैं उस व्यक्ति को कायर मानूगा, जो इनके बारे मे प्रचलित उत्तरो को श्रेष्ठतम ढग से सिद्ध न करे या जो इनके

हर पहलू की परख किए बिना ही साहस खो बैठे, क्योंकि हर व्यक्ति को तब तक अथक प्रयत्न करना चाहिए जब तक कि उसे इन दो बातों में से एक न मिले या वह इसकी वास्तविकता खोज न निकाले या उसको दूसरों से शिक्षा के रूप में ग्रहण न कर ले और यदि यह सम्भव न हो तो मेरे विचारानुसार उसे सर्वोत्तम निर्विवाद उपपत्ति को अपनाकर उसी को अपनी जीवन रूपी नौका की पतवार बनाना चाहिए। मैं मानता हूं कि यदि उसको अधिक निश्चित तथा सुरक्षित रूप से चलने के लिए परमात्मा का आदेश न मिल सका तो उसका काम खतरे से खाली न होगा। अच्छा, अब मैं जैसी कि आपकी इच्छा है, आपसे प्रश्न पूछूंगा, ताकि आगे जाकर मुझे स्वयं को इस बात पर धिक्कारना न पड़े कि मैंने उस समय अपनी शंकाओं के बारे में नहीं पूछा। बात यह है कि जब मैं अकेला या सेबेस सहित इस विषय पर चिन्तन करता हूं तो मुझे यह समस्त तर्क पर्याप्त दिखाई नहीं देता।"

सुकरात ने उत्तर दिया, "हो सकता है कि तुम्हारी बात ठीक हो, परन्तु मैं जानना चाहता हूं कि वह तर्क किस दृष्टि से तुम्हें पर्याप्त नहीं दिखाई देता ?"

"इस दृष्टि से, मान लीजिए कोई इस तर्क का प्रयोग एक वीणा तथा उसमें निकलने वाले संगीत के बारे में करता है। क्या वह इस संगीत को अदृश्य, अशरीरिक, परिपूर्ण तथा अलौकिक कहते हुए इसका अस्तित्व उस संगीतमय वीणा में स्थित नहीं मानेगा, जब कि वह वीणा तथा उसके सारे तार स्थूल हैं पदार्थ हैं, संयोजित है, पार्थिव होने के कारण नश्वर भी है ? यदि कोई वीणा को तोड़ दे या उसके तारों को काट दे तो इसी तर्क को मानने वाला आपकी तरह, बिलकुल उसी उपमा का अनुकरण करते हुए यह कहेगा – संगीत अमरजीवी है, उसका अस्तित्व मिटा नहीं है। आपके विचारानुसार वह यह तो नहीं कहेगा कि तारों के बिना वीणा अथवा स्वयं तार जो कि नश्वर हैं, रहेंगे और वह संगीत जो कि अलौकिक तथा अक्षय या ऐसी ही प्रकृति का हो, नष्ट हो गया है, और वह भी नश्वर वस्तु अर्थात् वीणा से पहले ही ? आपके तर्क के अनुसार वह संगीत कहीं-न-कहीं होगा ही और इससे पहले कि उसका कुछ बिगड़े, वह लकड़ी और तार नष्ट हो जाएंगे। ऐसा विचार, सुकरात, आपको भी आया होगा कि आत्मा के प्रति हमारी धारणा कुछ ऐसी ही है और यह कि यदि शरीर गर्मी, सर्दी, गीले तथा शुष्क तत्वों से जुड़ा हुआ हो, बंधा हुआ हो, तो आत्मा एक संगीत के समान है अथवा इन तत्वों का उपयुक्त मिश्रण है। यदि ऐसी बात हो, तो जब कभी बीमारी अथवा अन्य जख्मों के कारण शरीर के तार

ढीले हो जाएं या उन पर ज्यादा दबाव पड़े, तो आत्मा अत्यन्त अलौकिक होते हुए भी संगीत अथवा कलात्मक वस्तुओं के सामञ्जस्य की भांति अवश्य ही तुरन्त नष्ट होती है, जबकि शरीर के भौतिक अवशेष जलाए अथवा नष्ट न किए जाने तक बहुत समय के लिए रह सकते हैं और यदि कोई इसी धारणा को प्रकट करे कि आत्मा शरीर के तत्वों का समन्वय होने के कारण मृत्यु के समय सर्वप्रथम नष्ट होती है, तो उसके लिए हमारा उत्तर क्या होगा ?"

[illegible]

करने का भी समय मिलेगा। दोनों की बातें सुनने के बाद यदि इनमें कोई तथ्य हो तो हम इनसे सहमत हो जाएंगे। यदि ऐसा न हो तो हम अपनी बात पर अटल रहेंगे। हां सेबेस कृपा करके तुम भी अपनी समस्या बताओ।"

"सेबस ने उत्तर दिया, "हां, मैं भी बताऊंगा मेरे ख्याल में तर्क वहीं का वहीं है। इसमें अब भी वही दोष बताए जा सकते हैं, जिनको हमने पहले प्रकट किया था। मैं मानता हूं कि शरीर को धारण करने से पहले आत्मा का अस्तित्व कहीं-न-कहीं होता ही है। इस बात को बहुत ही निपुणता से, [illegible] परन्तु मेरे विचारानुसार यह [illegible] न भी आत्मा का अस्तित्व [illegible] ने के लिए तैयार नहीं कि आत्मा शरीर से कहीं अधिक मजबूत और टिकाऊ है, क्योंकि मेरी राय में आत्मा हर दृष्टि से शरीर की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ है, इसी कारण मेरी आपत्ति सिम्मिअस से भिन्न है। मेरा तर्क मानो मुझसे पूछता है, 'सेबेस, यह तो तुम्हें मालूम ही है कि मनुष्य की मृत्यु के बाद ज्यादा तुच्छ वस्तु (अर्थात् शरीर) का अस्तित्व तुरन्त ही नहीं मिटता, तो क्या तुम यह मानने को तैयार नहीं कि ज्यादा टिकाऊ वस्तु (अर्थात् आत्मा) भी उतने ही समय के लिए टिक सकती है? तुम इस तर्क से प्रभावित क्यों नहीं होते?' अब देखिए, मैं अपनी शंका को सिम्मिअस की भांति एक दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत करता हूं। आप जरा देखिए कि इसमें कोई तथ्य है या नहीं। मैं एक बूढ़े जुलाहे की उपमा दूंगा। जुलाहा मर गया और

उसकी मृत्यु के बाद कोई कहता है, 'वह मरा नहीं है, वह तो जीवित ही होगा। वह देखो उसका कोट, जो उसने स्वयं बुना था और जिसको वह पहनता था। पूरे का पूरा तथा अजीर्ण पड़ा हुआ है।' यदि कोई उसका विश्वास न करे तो वह उससे पूछता है, 'क्यों भाई! मनुष्य चिरस्थायी है, कि वह कोट जिसको पहना जाता है?' और जब उसे यह उत्तर मिलता है कि मनुष्य ही चिरस्थायी है, तो वह मान लेता है कि इस पर उसकी बात निश्चय ही सिद्ध हो गई है, क्योंकि कम टिकाऊ वस्तु (अर्थात् कोट) के होते हुए जुलाहे का होना स्वाभाविक ही है। चिरस्थायी जो ठहरा, परन्तु सिम्मिअस, यह बात गलत है। तुम भी इसको गलत ही मानोगे और अन्य व्यक्ति भी ऐसी बातों को बेहूदा ही मानेंगे। सत्य तो यह है कि उपर्युक्त जुलाहे ने बहुत-से ऐसे कोट बुन लिए और उनको पहनकर पीछे छोड़ दिया, जब कि उपर्युक्त कोट ने उसे ही पीछे छोड़ दिया, परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मनुष्य कोट से निकृष्ट या निर्बल है। अब देखिए, आत्मा और शरीर के सम्बंध को इसी दृष्टांत द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है और इसी प्रकार कोई भी व्यक्ति कह सकता है और उसका कहना ठीक ही होगा कि आत्मा चिरस्थायी है और तुलनात्मक दृष्टि से शरीर निर्बल और अल्पकालिक है। वह इसी प्रकार दलील दे सकता है कि प्रत्येक आत्मा बहुत से शरीरों को पीछे छोड़ती है और विशेषकर यदि मनुष्य बहुत समय तक जीवित रहे, तो उसके जीते जी उसका शरीर गलने लगता है, नष्ट होने लगता है और आत्मा निरन्तर नये तन्तु बुनती रहती है और गले हुए अंगों की मरम्मत करती रहती है और जब कभी आत्मा नष्ट होती है, तो अवश्य ही अपना अन्तिम आवरण धारण किए होगी, जो कि उसके बाद जीवित रहेगा। इस प्रकार जब आत्मा अन्तम नष्ट हो जाएगी, तो शरीर अपनी स्वाभाविक कमजोरियों को प्रकट करके तुरन्त ही नश्वर शून्यरूप धारण करेगा। इसलिए मनुष्य के मरणोपरान्त आत्मा के स्थायी अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए मैं आत्मा के बलिष्ठ होने के तर्क को स्वीकार नहीं कर सकता। तुम जितनी बातों को संभव मानते हो उन्हें स्वीकार करते हुए यदि हम एक कदम और बढ़ जाएं, इतना ही न मानें कि आत्मा केवल मनुष्य की उत्पत्ति से पहले ही थी, अपितु यह भी कि बहुतों की आत्माएं मरने के बाद भी रहती हैं और रहती रहेंगी, शरीर धारण करती रहेंगी, उनका त्याग करती रहेंगी और यह भी मान लें कि आत्मा में स्वाभाविक ही एक ऐसी शक्ति है, जो वह डटी रहती है और कई बार जन्म ले सकती है, परन्तु फिर भी हम ऐसा सोच सकते हैं कि कभी यह आत्मा क्रमागत जन्मों के

कष्टो मे थककर अन्त मे किसी एक मृत्यु के वशीभूत हो जाएगी और सदा के लिए नष्ट हो जाएगी। हो सकता है कि हममे से किसी को शरीर की उस मृत्यु और उस विसर्जन का ज्ञान न हो, जो कि आत्मा को नष्ट करता है, क्योकि इस बात का अनुभव किसी को नही हो सकता यदि मेरा यह तर्क युक्ति युक्त हो, तो मैं दावे के साथ कहता हू कि मृत्यु के प्रति साहस दिखाने वाले का साहस मूर्खता के सिवा और कुछ नहीं। हा, यदि वह सिद्ध करे कि आत्मा पूर्ण रूप से अजर और अमर है, तो बात कुछ और है। यदि आत्मा की अमरता सिद्ध नहीं हो सकती, तो मरने वाले व्यक्ति को सदा भय लगा रहेगा कि कही शरीर के टूटते ही उसकी आत्मा भी पूर्णरूप से नष्ट न हो जाए।

उनकी ये बातें सुनकर जैसा कि बाद मे हमने एक-दूसरे के सम्मुख प्रकट किया, हम लोगो के बीच एक विचित्र सी कटुता उत्पन्न हो गई। पहले तर्क ने हममे कितना दृढ विश्वास पैदा किया और अब उसी विश्वास के डगमगाने से मानो उस पहले तर्क तथा भविष्य के किसी भी अन्य तर्क के प्रति एक प्रकार का अनिश्चय तथा भटकाव सा पैदा हो गया था तो हम इस बात को परखने की योग्यता न थी या हमारे विश्वास के लिए कोई आधार नही बचा था।

एखे० मेरा विचार भी तुम्हारे जैसा ही है। ईश्वर की सौगन्ध! बिलकुल वैसा ही। फएदो, जब तुम बोल रहे थे, उस समय मैं स्वय अपने आप से यही प्रश्न पूछने लगा था कि ऐसा अन्य कौन-सा तर्क होगा, जिस पर कि मैं विश्वास करू? सुकरात के तर्क जितना प्रभावपूर्ण और क्या हो सकता था और अब उसी तर्क की प्रतिष्ठा मिट गई। यह सिद्धान्त कि आत्मा एक सगीत के समान है मुझे सदा ही प्रभावित करता आया है और जब कभी इसकी बात छिड़ती, तो यह मुझे याद आता मानो यह मौलिक रूप से मेरा ही मत हो। अब मुझे फिर से खोज आरम्भ करनी होगी। किसी दूसरे तर्क को ढूढ निकालना होगा, जो कि यह सिद्ध कर सके कि मनुष्य की मृत्यु के बाद आत्मा का अस्तित्व मिटता नही। जरा यह तो बताओ कि सुकरात ने फिर क्या कदम उठाए? जिस विचित्र तथा अप्रिय भावना की बात तुमने कही, इसी भावना का आभास उसमे भी दिखाई दिया? या कि उसने शाति पूर्वक उस प्रहार को थाम लिया? और उसका उत्तर कैसा था प्रभाव पूर्ण अथवा प्रभावहीन? कृपा करके उस घटना का वर्णन, जितनी भी बारीकी से हो सके, करो।

फए० : एखेक्रातेस, मैं सुकरात को देखकर प्राय हैरान होता रहा हू,

परन्तु इतना हैरान मैं शायद ही कभी हुआ था जितना कि उस अवसर पर हुआ। वह इन बातों का उत्तर दे सकता था और यह कोई आश्चर्य की बात भी नहीं थी। जिन बातों ने मुझे विस्मित कर दिया, वे कुछ और ही थीं पहली यह कि किस नम्रता मधुरता और सौजन्य के साथ उसने उन युवकों की बातों का स्वागत किया। फिर कितनी शीघ्रता से उसे उनके तर्क द्वारा पहुंचाए गए घाव का बोध हुआ और फिर कितनी तत्परता से उसने उस घाव को भर दिया। उसकी तुलना हम उस सेनापति से कर सकते हैं, जो अपनी पराजित और बिखरी हुई सेना को एकत्रित करके, उसको अपने साथ तर्क रूपी क्षेत्र में पुन लौटकर आने को बाध्य कर रहा हो।

एखे० : फिर क्या हुआ ?

फए० सुनाता हू। मैं उसकी दाहिनी तरफ निकट ही एक चौकी पर बैठा था और वह हमसे कुछ ऊंचाई पर अपनी खाट पर बैठा था। मेरे बालों पर हाथ फेरते हुए और मेरी गर्दन पर के बालों को थपथपाते हुए (मेरे बालों के साथ खेलने का उसका अपना ही ढंग था) वह कहने लगा, 'फएदो, मुझे लगता है कि कल तुम्हारी यह सुंदर लटें काटी जाएगी।"

'हां सुकरात, मुझे ऐसा ही लगता है," मैंने उत्तर दिया।

'यदि तुम मेरी नसीहत मान लोगे, तो ऐसा नहीं होगा।"

'हां, तो फिर इनका क्या करू?" मैंने पूछा।

उसने उत्तर दिया,—'यदि हमारे तर्क का दम निकलता है और हम इसमें पुन जान न फूंक सकें, तो कल नहीं आज ही हम दोनों अपने केश कटवाएंगे और यदि मैं तुम्हारी जगह होता और मेरा तर्क पछाड दिया जाता, सिम्मिअस तथा सेबेस के सम्मुख मैं अपने तर्क को युक्तियुक्त सिद्ध न कर पाता, तो मैं स्वयं अरगियों[1] की भांति यह प्रण करता कि संघर्ष को पुन चालू करके जब तक मैं उनको नहीं पछाड़ू, मैं अपने केश नहीं रखूंगा।'

मैंने कहा, "ठीक है परन्तु कहते हैं कि दो का सामना तो हेरोक्लेस[1] भी नहीं कर सकता।"

"अरे मैं जो बैठा हूं। मुझसे कहो और सूर्यास्त तक मैं तुम्हारा इयोलाअस[1] बना रहूंगा।'

मैंने तुरन्त ही उत्तर दिया कि मैं तुमसे सहायता तो लूंगा, परन्तु स्वयं को हेराक्लेस और तुम्हें इयोलाअस मान कर नहीं, बल्कि तुम्हें हेराक्लेस और स्वयं को इयोलाअस मानकर।

'यह भी ठीक ही है, परन्तु सर्वप्रथम हमें एक विपत्ति से सावधान रहना होगा।"

"कौन-सी विपत्ति ?" मैंने पूछा।

"कहीं हम तर्क-द्वेषी न बनें, उसने उत्तर दिया, इससे बुरा मनुष्य के साथ और हो ही क्या सकता है ? क्योंकि जिस प्रकार इस संसार में नर-द्वेषी पाए जाते हैं, वैसे ही तर्क-द्वेषियों अथवा विचार-द्वेषियों की भी कोई कमी नहीं और ये दोनों सांसारिक अज्ञानता के फलस्वरूप ही बैसे बनते हैं। नर-द्वेष मनुष्य की अनुभव-शून्यता से उत्पन्न होता है। मान लो तुम्हें एक व्यक्ति पर पूरा विश्वास है, तुम उसको पूर्ण रूप से धर्मनिष्ठ सच्चा और विश्वसनीय समझते हो और कुछ समय बाद वह झूठा और दुष्ट सिद्ध होता है, फिर दूसरे व्यक्ति से भी तुम्हारा ऐसा ही अनुभव होता है और फिर तीसरे से और जब ऐसे ही अनुभव मनुष्य को बार-बार हो लगते हैं, विशेषकर अपने उन परिचित मित्रों के साथ, जिनको वह अपना विश्वास पात्र मानता हो, और उनके साथ उसके कुछ झगड़े भी हो जाते हैं तो फिर उसे समस्त मानव जाति से घृणा हो जाती है, और उसे पक्का विश्वास हो जाता है कि किसी भी व्यक्ति में सज्जनता लेशमात्र भी नहीं। क्यों फएदो, तुमने मानव चरित्र के इस पहलू का अवलोकन तो किया होगा ?"

"हां, किया है।"

"क्या इस प्रकार की भावना अपमानजनक नहीं ? क्या यह स्पष्ट नहीं कि ऐसे व्यक्ति को दूसरों के साथ व्यवहार करने के लिए मानव-प्रकृति के आवश्यक ज्ञान का बिलकुल ही अनुभव नहीं ? नहीं तो वह अनुभव उसे वास्तविक स्थिति समझाता कि बुरे और भले तो बहुत ही कम लोग हैं अधिकतर लोग इन दोनों के बीच वाले मध्यस्थान में होते हैं।"

"मैं यह समझा नहीं," मैंने कहा।

"मेरे कहने का अभिप्राय बिलकुल वही है, जो कि तुम बहुत ही बड़ी तथा बहुत ही छोटी वस्तु के बारे में सोच सकते हो—जैसे एक विशालकाय अथवा अल्पकाय मनुष्य जैसी दूसरी असाधारण वस्तु और कोई नहीं। वैसे ही समस्त छोर बिन्दुओं, महान् और तुच्छ, तेज और मन्द, उचित और अनुचित अथवा काला और सफेद, के साथ भी ठीक है। उदाहरणार्थ तुम मनुष्य को लो, कुत्तों या अन्य किसी वस्तु को लो, छोर-बिन्दु को छूने वाले बहुत ही कम मिलेंगे, जबकि मध्य स्थान बहुधा भरे रहते हैं। क्या इस बात का अवलोकन तुमने कभी नहीं किया ?"

"हां, क्यों नहीं, किया है," मैंने उत्तर दिया।

"और यदि बुराइयों की एक प्रतियोगिता रखी जाए, तो अत्यन्त ही

बुरो की संख्या बहुत ही कम पाई जाएगी। इस बात को मानते हो कि नहीं ?

"हां, ऐसा ही पाया जायेगा, मैंने कहा।"

"निस्सन्देह ऐसा ही होगा। हालांकि इस क्षेत्र में मनुष्य और तर्क एक जैसे नहीं। खैर, जितना कुछ तुमने मुझसे कहलवाया, उतना कहने का मेरा विचार तो था नहीं, हां, तुलना की बात तो यह थी कि जब एक साधारण व्यक्ति, जिसको तर्क-विद्या का ज्ञान हो, एक तर्क को युक्ति-युक्त मानकर बाद में उसी को निराधार पाये, चाहे वह वास्तव में निराधार न भी हो और इसी प्रकार जब उसको एक-दो ऐसे ही अनुभव हो जायें, तो उसका समस्त विश्वास भंग हो जाता है और जैसा कि तुम जानते हो, बड़े-बड़े विवादास्पद व्यक्तियों को अन्त में यह भ्रम होने लगता है कि मनुष्यों में वे सबसे अधिक बुद्धिमान हैं, क्योंकि केवल वही समस्त तर्कों अथवा एयुरिपस[11] की धाराओं की भांति निरन्तर उतार-चढ़ाव वाली अर्थात् सदा बदलती रहने वाली वस्तुओं की अस्थिरता तथा खोखलेपन को समझ पाते हैं।"

"ठीक है, मैंने कहा।"

"और हां, फएदो, देखो कितने खेद का विषय है कि यदि सत्य, स्थिरता, अथवा ज्ञान की सम्भावना होते हुए, कोई व्यक्ति संयोगवश किसी ऐसे तर्क में आ भिड़ता है, जो कि पहले युक्ति युक्त लगता है और बाद में खोखला प्रतीत होता है, तो वह व्यक्ति क्रोध में आकर अपने आपको अथवा अपनी अल्प बुद्धि को दोषी ठहराने के बजाए अन्त में उसी तर्क को दोष देने में प्रसन्नता का अनुभव करता है और वह इसके बाद सदा ही उन तर्कों को धिक्कार कहते हुए सत्य तथा वास्तविकता के ज्ञान को खो बैठता है।"

"निस्सन्देह, यह बात बहुत ही दुखद है, मैंने कहा।"

"इसलिए हमें सर्व प्रथम इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कहीं हम अपने मन में इस विचार को न आने दें कि प्रत्येक तर्क अनुचित तथा खोखला है। इसके विपरीत हमें यह कहना चाहिए कि स्वयं हमारी ही बुद्धि अभी प्रौढ़ नहीं हुई है। हमें पुरुषार्थ करके घोर संघर्ष करना चाहिए ताकि हमारी बुद्धि स्वस्थ बन जाए—ऐसा करने में तुम तथा अन्य व्यक्ति अपने समस्त भविष्य का ध्यान रखोगे और मैं अपनी मृत्यु की अपेक्षा का, क्योंकि मुझे पूरा ध्यान है कि इस समय मेरी प्रवृत्ति दार्शनिकों जैसी नहीं। मैं तो एक सामान्य व्यक्ति की भांति केवल तरफदारी कर रहा हूं। यह

तरफदारी करने वाला व्यक्ति वाद-विवाद के समय कभी भी उस प्रश्न की न्याय सगति की ओर ध्यान नही देता। वह केवल अपने ही दृढ़ वचनो से सुनने वालो को प्रभावित करने के लिए उत्सुक रहता है। हमारे बीच इस समय अन्तर केवल इस बात का है कि जहा वह श्रोतागण को अपनी बातो की सत्यता का विश्वास दिलाना चाहता है, वहा मैं स्वय अपने आपको सप्रमाण समझाना चाहता हू। श्रोतागण को विश्वास दिलाना मेरा मुख्य उद्देश्य नही और इस तर्क से मैं अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहता हू, क्योकि यदि मेरी बात सच निकली, तो मैं स्वय को सत्य का प्रेरक बनाकर धन्य होऊगा और यदि मृत्यु के बाद सब शून्य ही हो, तो मैं इन अन्तिम क्षणो मे अपने मित्रो को अपने शोक से दु ख नही पहुचाऊगा। मेरा अज्ञान भी चिरस्थाई नही रहेगा। यह मेरे साथ ही मर जायेगा और इस प्रकार कोई हानि न होगी। तो हा, सिम्मिअस और सेबेस, मैं अब इसी मानसिक स्थिति के आधार पर तुम्हारे तर्क का विश्लेषण करूगा। और हा, तुम सत्य का ध्यान रखना, सुकरात का नही। यदि मेरी बात तुम्हें युक्ति-युक्त लगे, तो मेरे साथ सहमत होना यदि नही, तो अपनी सपूर्ण शक्ति से मेरा विरोध करना, ताकि मैं जोश मे आकर तुम्हे तथा स्वय अपने आपको धोखा न दू और मधुमक्खी की भाति स्वय मरने से पहले अपना डक तुम पर न छोडू।'

"अच्छा, अब हम आगे चलें, उसने कहा, परन्तु पहले यह तो देखू कि मुझे तुम्हारी बातें ठीक ठीक याद हैं कि नही! यदि मुझे ठीक याद है, तो सिम्मिअस ने अपना सन्देह इस प्रकार प्रकट किया कि हो न हो आत्मा सगीत स्वरूप होने के कारण शरीर से श्रेष्ठ और ईश्वरीय होते हुए भी शरीर से पहले नष्ट होती है और उधर से सेबेस मानता है कि शरीर की अपेक्षा आत्मा अधिक स्थाई है, परन्तु हो सकता है कि अनेक शरीरो को छोडकर अन्त मे आत्मा स्वय नष्ट हो जाए और इस प्रकार उस अन्तिम शरीर से पहले ही वह शून्य समान हो जाये। इस प्रकार की घटना को यह मृत्यु कहता है, क्योकि उसके अनुसार मृत्यु शरीर का नष्ट होना न होकर आत्मा का नष्ट होना ही है, क्योकि शरीर में नाश का क्रम तो चलना ही रहता है। क्यो सिम्मिअस और सेबेस! इन्ही बातों को परखना है न?"

"दोनो ने मान लिया कि इन्ही बातो का विश्लेषण होना है।"

"इस पर सुकरात ने पूछा, क्या तुम मेरे तर्क की युक्तियो से पूर्णरूप से असहमत हो या केवल आशिक रूप से?"

"केवल आंशिक रूप से, उन्होने उत्तर दिया।"

"अच्छा, मेरे तर्क के उस भाग के बारे मे तुम्हारा क्या विचार है, जिसमे हमने ज्ञान को 'स्मरण' के सदृश मानकर यह परिणाम निकाला था कि शरीर में बन्द होने से पहले आत्मा का अस्तित्व कहीं न-कहीं होता ही है ?"

"सेबेस ने उत्तर दिया कि तर्क के उस भाग से वह अत्यन्त ही प्रभावित हुआ था और इस तथ्य मे उसका विश्वास पूर्णरूप से अटल है। सिम्मिअस सहमत हुआ और उसने कहा कि वह स्वय कभी भी किसी भिन्न विचार को अपनाने की सम्भावना की कल्पना भी नहीं कर सकता।"

"परन्तु हे, थेब्स निवासी मित्रो ! यदि तुम अब भी इस बात को मानते हो कि सगीत एक मिश्रण है और आत्मा एक सगीत है, जो कि शरीर के ढाचे पर तने हुए तारो से निकलता है। हा, यदि तुम इन बातों को अब भी मानते हो तो तुम्हें अपने विचार बदलने होंगे क्योंकि तुम यह तो नहीं कहोगे कि सगीत की सत्ता उन तत्वो से पहले ही थी जिनसे इसका निर्माण होता है।"

"हां सुकरात, ऐसा तो हम नही कहेंगे।"

"परन्तु क्या तुम यह नही समझते कि तुम कुछ ऐसा ही कहते हो— कि आत्मा मनुष्य का स्वरूप तथा शरीर धारण करने से पहले भी थी और उन तत्वो की बनी थी जिनका कि तब अस्तित्व ही न था लेकिन जैसा कि तुम मानते हो—सगीत और आत्मा की प्रकृति समान नही है। पहले वीणा हो फिर तार और फिर लय रहित बेसुरी ध्वनि, तत्पश्चात सगीत उत्पन्न किया जाता है। यदि यह सगीत वीणा से पहले ही नष्ट हो जाता है तो आत्मा के प्रति यह धारणा उस 'स्मरण' वाली धारणा के साथ मेल खा सकती है क्या ?"

'बिलकुल नही सिम्मिअस ने उत्तर दिया।"

'फिर भी उसने कहा, जिस सवाद का विषय ही सगीत हो उसमे सगीत जैसा सामजस्य तो होना ही चाहिए।"

"जी हां, होना चाहिए, सिम्मिअस ने कहा।'

"किन्तु इन दो साध्यों मे कि ज्ञान स्मरण है और आत्मा सगीत है, मुझे सामजस्य नहीं दिखाई देता। इनमें से तुम किसका पक्ष लोगे ?"

"उसने उत्तर दिया, सुकरात मेरे ख्याल मे मुझे दोनों साध्यों मे से पहला साध्य उचित लगता है क्योंकि वह मुझे पूरी तरह से समझाया गया है जबकि दूसरे साध्य को तनिक भी नहीं समझाया गया और उसका

आधार केवल सत्याभास और सभाव्यता ही है और यही कारण है कि अधिकाश लोग उसी मे विश्वास करते है। मैं यह अच्छी तरह जानता हू कि सभाव्यता के आधार पर टिके हुए तर्क प्राय दिखावटी होते हैं और यदि उनका प्रयोग करने मे अत्यन्त सावधानी न बरती जाए तो वे प्राय भ्रम मे डाल देते हैं। यही बात रेखा-गणित तथा दूसरी बातो पर लागू होती है। इसके विपरीत ज्ञान और स्मरण के सिद्धान्त को मेरे सम्मुख विश्वस्त आधार पर सिद्ध किया गया है। प्रमाण यह था कि शरीर मे आने से पहले ही आत्मा का अस्तित्व होता है, क्योकि उसका मूल तत्व ही अस्तित्व के समरूप है। अब क्योकि मैं इस तर्क से प्रभावित हो चुका हू, मैंने इसको यथेष्ट आधार पर ग्रहण कर लिया है और मेरा विचार है कि अब मुझे उस दूसरे तर्क को बिलकुल ही त्याग देना चाहिए और दूसरो को भी आत्मा को सगीत बताने से रोकना चाहिए।"

"अब सिम्मिअस, मैं इसी बात को दूसरे दृष्टिकोण से प्रस्तुत करूगा। क्यो सिम्मिअस, सगीत तथा किसी अन्य मिश्रण की दशा उसके साधक तत्वो की दशा से भिन्न हो सकती है क्या ?"

"बिलकुल नही।"

"और इसका कर्म अथवा भोग उनके कर्म या भोग से भिन्न नही होता ?"

"उसने यह बात स्वीकार कर ली।"

"अत सगीत वास्तव मे अपने साधक अगो अथवा तत्वो का पथ-प्रदर्शन नही करता, बल्कि उनका अनुसरण करता है।"

"उसने यह भी मान लिया।

"क्योकि, सगीत की गति इसकी ध्वनि अथवा अन्य कोई गुण इसके साधक भागो के विपरीत होना सम्भव नही।"

"हा, वह तो असम्भव ही है उसने कहा।"

"और क्या प्रत्येक सगीत की प्रकृति का आधार वह ढग नही, जिससे कि उन साधक तत्वो मे सामजस्य लाया गया हो।"

"मैं आपकी बात नही समझा, उसने कहा।"

"मेरे कहने का आशय यह है कि सगीत की विभिन्न कोटिया हो सकती है। अत किसी भी सम्भव सीमान्त तक जितनी शुद्धता तथा सपूर्णता से स्वरो को मिलाया जाए, उतना ही शुद्ध तथा सपूर्ण वह सगीत भी होगा और उस सामजस्य मे इन गुणो की जितनी कमी रहेगी उस संगीत मे भी इन गुणो की उतनी ही कमी रहेगी।"

"हां, सत्य है।"

परन्तु क्या आत्मा भी भिन्न भिन्न कोटियो को अंगीकार करती है या क्या एक आत्मा किसी दूसरी आत्मा से न्यूनतम मात्रा मे अथवा सम्पूर्ण रूप से कभी कम या ज्यादा हो सकती है ?"

"बिलकुल ही नही।'

"फिर भी, हम निश्चित रूप से किन्हीं दो आत्माओ मे से एक म बुद्धि, सद्गुण और साधुता का होना देखते हैं और दूसरी म मूर्खता, दुर्गुण और दुष्टता का। क्या हमारा ऐसा करना ठीक भी है ?"

"हां, है।"

'परन्तु जो लोग यह मानत हैं कि आत्मा एक संगीत है वे इसमे गुण एव दोष की उपस्थिति के सम्बन्ध म क्या कहगे ? क्या वे यह कहेंगे कि इस संगीत मे संगीत है और दूसरे संगीत म बेसुरापन और एक गुणवान आत्मा के संगीत मे सामंजस्य है और स्वय सामंजस्यपूर्ण होने हुए उसमे वह दूसरा वाला सामंजस्य समाया हुआ है और एक दुष्ट आत्मा बेसुरी है और उसम सामंजस्य नहीं है ?"

'सिम्मिअस ने कहा, मैं कह नही सकता परन्तु मेरा विचार है कि आत्मा और संगीत का सादृश्य मानने वाले लोग अवश्य कुछ ऐसा ही कहेंगे।"

किन्तु हम पहले ही मान चुके हैं कि कोई भी आत्मा किसी अन्य आत्मा से कम या ज्यादा नही होती। इसी तथ्य के अनुरूप हम क्या यह नही कह सकत कि एक संगीत दूसरे संगीत से न्यूनतम मात्रा मे अथवा सम्पूर्ण रूप से कभी कम या ज्यादा नही हो सकता ?'

"सर्वथा सत्य है।"

'और वह जो कम या ज्यादा संगीतमय न हो, कम या ज्यादा सामंजस्य पूर्ण नही होता ?"

"ठीक है।"

"और जो कम या ज्यादा सामंजस्यपूर्ण न हो उसमे कम या ज्यादा सामंजस्य नही हो सकता। सबमे बराबर का ही सामंजस्य होता है।"

'हां सामंजस्य का समान होना आवश्यक है।"

'तो फिर यदि एक आत्मा दूसरी आत्मा से सर्वथा कम या अधिक नहीं हो सकती तो उनमें कम या अधिक सामंजस्य भी नही होना चाहिए।"

'बिलकुल ठीक है।"

"अत उनमें कम या ज्यादा बेसुरापन या सुरीलापन नहीं हो सकता।'

'नही।'

"इस प्रकार यदि उसमे कम या ज्यादा बेसुरापन या सुरीलापन नहीं होता तो एक आत्मा मे दूसरी आत्मा से ज्यादा दोष या गुण भी नही हो सकता,क्योंकि हमने दोष को बेसुरापन और गुण को सुरीलापन माना है।"

"तनिक भी ज्यादा नही होगा।"

"सिम्मिअस, इसी बात को अधिक स्पष्टरूप मे हम ऐसे कह सकते हैं—आत्मा यदि संगीत के सदृश हो तो कभी भी दोष-युक्त नहीं होगी, क्योंकि संगीत सम्पूर्ण रूप से सामंजस्यपूर्ण होते हुए आंशिक रूप से भी बेसुरा नहीं हो सकता।"

'नही।'

"इसलिए जो आत्मा विशुद्ध रूप से आत्मा हो वह दोष-युक्त नहीं हो सकती ?"

"कैसे हो सकती है जबकि पहले का तर्क सिद्ध हो चुका है ?"

"अत. यदि सभी आत्माएं अपनी प्रकृति के आधार पर समान हो तो समस्त प्राणियो की सभी आत्माएं समान रूप से अच्छी होगी।"

"मैं आपसे सहमत हू सुकरात, उसने कहा।"

"अब बोलो। तुम्हारे विचार से यह सब कुछ सत्य होगा क्या ? क्योंकि यही उस परिकल्पना का परिणाम है, जिसके अनुसार आत्मा को संगीत के सदृश माना गया है ?"

'यह सत्य नही हो सकता।'

"एक और बात है। आत्मा विशेष रूप से एक ज्ञानवान आत्मा के अतिरिक्त मानव प्रकृति के तत्त्वो का निर्देशक कौन हो सकता है। तुम किसी ऐसे निर्देशक को जानते हो ?"

'*नही, बिलकुल नही।*'

"और क्या आत्मा का शरीर के अनुरागो से कोई तालमेल है या कि वह उनका विरोध करती है ? उदाहरणार्थ, जब शरीर गरम और प्यासा होता है, तो क्या आत्मा हमे पानी पीने के विरुद्ध प्रवृत्त नही करती ? और शरीर के भूखे होने पर खाने के विरुद्ध ? शरीर सबन्धी वस्तुओं के विरुद्ध आत्मा की प्रवृत्ति के हजारो उदाहरणो मे से यह केवल एक ही उदाहरण है।"

"सर्वथा सत्य है।"

"परन्तु हम पहले ही मान चुके हैं कि संगीत होने के कारण आत्मा अपने साधक तत्त्वों के अर्थात् तारो के तनाव, उनकी ढिलाई, कम्पन तथा अन्य प्रवृत्तियों के विरुद्ध कभी एक भी लय नहीं निकाल सकती। वह केवल उनका

अनुसरण कर सकती है, पथ-प्रदर्शन नहीं।'

"ऐसा ही होना चाहिए, उसने उत्तर दिया।"

"और फिर भी हमने अब आत्मा को इसके बिलकुल विपरीत करते पाया है। अर्थात्, यह उन तत्वों का नेतृत्व करती है, जिनकी कि यह बनी हुई मानी जाती है। समस्त जीवन में यह प्रत्येक ढंग से लगभग सदा ही उनका विरोध करती है। उनको दबाती है। कभी अधिक हिंसात्मक ढंग से, औषधि तथा शारीरिक व्यायाम की पीड़ा से, तो कभी नम्रता से, कभी डरा धमका कर, तो कभी इच्छाओं, उद्वेगों तथा भ्रमों को नम्रता से झिड़ककर। मानो अपने से भिन्न किसी वस्तु से बात कर रही हो, जैसे ओडुस्सेइआ" में होमर ओडुस्सेअस" को इन शब्दों में विलाप करते दिखाता है—"

"कूट के छाती धिक्कारा उसने यों दिल को अपने
झेल ऐ मेरे दिल ! देखा इससे बदतर है तूने।"

"क्या तुम्हारे विचारानुसार होमर ने यह इस विचार से लिखा कि आत्मा एक ऐसा संगीत है, जिसकी अगवानी शरीर के अनुरागों द्वारा हो सकती है और जिसकी प्रकृति उनको वश में करके, उनका नेतृत्व करना नहीं है, जबकि यह स्वयं प्रत्येक सामंजस्य की अपेक्षा कहीं अधिक ईश्वरीय है?"

"हां, सुकरात, मेरा तो ऐसा ही विचार है।"

"फिर हे मित्र ! हमारा यह कहना कि आत्मा एक संगीत है, कभी भी ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसा कहने से देवतुल्य होमर तथा हमारे अपने वक्तव्य का विरोध होगा।"

"सर्वथा सत्य है, उसने कहा।"

"सुकरात ने कहा यह रही हारमोनिआ," तुम्हारे थेब्स की देवी, जिसने बड़ी दयालुता से हमारा लोहा मान लिया है, परन्तु सेबेस, उसके पति कादमस" के साथ क्या किया जाए? उसके साथ मैं सन्धि कैसे करूं?"

'सेबेस ने कहा, मेरे मतानुसार आप उसको संतुष्ट करने का कोई न-कोई मार्ग ढूंढ ही निकालेंगे। मुझे विश्वास है कि आपने इस तर्क को हारमोनिआ के साथ कुछ इस ढंग से जोड़ा है, जिसकी कि मैं कभी आशा ही नहीं कर सकता, क्योंकि जब सिम्मिअस अपने बखेड़े को बता रहा था, तो मैंने बिलकुल यही कल्पना की कि उसका उत्तर नहीं दिया जा सकेगा। इसलिए मैं यह देखकर चकित हुआ कि उसका तर्क आपके प्रथम वार को भी रोक न सका और यह असम्भव नहीं यदि दूसरा भी, जिसको आपने कादमस का नाम दिया है, वैसी ही गति प्राप्त करे।"

"नहीं, मेरे अच्छे मित्र, हमें गर्व नहीं करना चाहिए, सुकरात ने कहा,

'नहीं।'

"इस प्रकार यदि उसमें कम या ज्यादा बेसुरापन या सुरीलापन नहीं होता तो एक आत्मा में दूसरी आत्मा से ज्यादा दोष या गुण भी नहीं हो सकता, क्योंकि हमने दोष को बेसुरापन और गुण को सुरीलापन माना है।"

"तनिक भी ज्यादा नहीं होगा।"

"सिम्मिअस, इसी बात को अधिक स्पष्ट रूप में हम ऐसे कह सकते हैं—आत्मा यदि संगीत के सदृश हो तो कभी भी दोष-युक्त नहीं होगी, क्योंकि संगीत सम्पूर्ण रूप से सामंजस्यपूर्ण होते हुए आंशिक रूप से भी बेसुरा नहीं हो सकता।"

'नहीं।'

"इसलिए जो आत्मा विशुद्ध रूप से आत्मा हो वह दोष युक्त नहीं हो सकती?"

"कैसे हो सकती है जबकि पहले का तर्क सिद्ध हो चुका है?"

"अत: यदि सभी आत्माएं अपनी प्रकृति के आधार पर समान हों तो समस्त प्राणियों की सभी आत्माएं समान रूप से अच्छी होंगी।"

"मैं आपसे सहमत हूं सुकरात, उसने कहा।"

"अब बोलो। तुम्हारे विचार से यह सब कुछ सत्य होगा क्या? क्योंकि यही उस परिकल्पना का परिणाम है, जिसके अनुसार आत्मा को संगीत के सदृश माना गया है?"

'यह सत्य नहीं हो सकता।'

"एक और बात है। आत्मा विशेष रूप से एक ज्ञानवान आत्मा के अतिरिक्त मानव प्रकृति के तत्वों का निर्देशक कौन हो सकता है! तुम किसी ऐसे निर्देशक को जानते हो?"

"नहीं, बिलकुल नहीं।"

"और क्या आत्मा का शरीर के अनुरागों से कोई तालमेल है या कि वह उनका विरोध करती है? उदाहरणार्थ, जब शरीर गरम और प्यासा होता है, तो क्या आत्मा हमें पानी पीने के विरुद्ध प्रवृत्त नहीं करती? और शरीर में भूखे होने पर खाने के विरुद्ध? शरीर संबंधी वस्तुओं के विरुद्ध आत्मा की प्रवृत्ति के हजारों उदाहरणों में से यह केवल एक ही उदाहरण है।"

"सर्वथा सत्य है।"

"परन्तु हम पहले ही मान चुके हैं कि संगीत होने के कारण आत्मा अपने साधक तत्वों के अर्थात् तारों के तनाव, उनकी ढिलाई, कम्पन तथा अन्य प्रवृत्तियों के विरुद्ध कभी एक भी लय नहीं निकाल सकती। वह केवल उनका

अनुसरण कर सकती है, पथ-प्रदर्शन नहीं।

'ऐसा ही होना चाहिए, उसने उत्तर दिया।"

'और फिर भी हमने अब आत्मा को इसके बिलकुल विपरीत करते पाया है। अर्थात्, यह उन तत्त्वों का नेतृत्व करती है, जिनकी कि यह बनी हुई मानी जाती है। समस्त जीवन में यह प्रत्येक ढंग से लगभग सदा ही उनका विरोध करती है। उनको दबाती है। कभी अधिक हिंसात्मक ढंग से, औषधि तथा शारीरिक व्यायाम की पीड़ा से, तो कभी नम्रता से, कभी डरा धमका कर तो कभी इच्छाओं, उद्वेगों तथा भ्रमों को नम्रता से झिड़ककर। मानो अपने से भिन्न किसी वस्तु से बात कर रही हो, जैसे ओद्युसेइआ" में होमर ओद्युसेअस" को इन शब्दों में विलाप करते दिखाता है—"

"कूट के छाती धिक्कारा उसने यों दिल को अपने
झेल ऐ मेरे दिल! देखा इससे बदतर है तूने।'

"क्या तुम्हारे विचारानुसार होमर ने यह इस विचार से लिखा कि आत्मा एक ऐसा संगीत है जिसकी अगवानी शरीर के अनुरागों द्वारा हो सकती है और जिसकी प्रकृति उनको वश में करके, उनका नेतृत्व करना नहीं है, जबकि यह स्वयं प्रत्येक सामंजस्य की अपेक्षा कहीं अधिक ईश्वरीय है?"

'हां, सुकरात, मेरा तो ऐसा ही विचार है।"

"फिर हे मित्र! हमारा यह कहना कि आत्मा एक संगीत है, कभी भी ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसा कहने से देवतुल्य होमर तथा हमारे अपने वक्तव्य का विरोध होगा।"

'सर्वथा सत्य है, उसने कहा।"

'सुकरात ने कहा यह रही हारमोनिआ," तुम्हारे थेब्स की देवी जिसने बड़ी दयालुता से हमारा थोड़ा मान लिया है, परन्तु सेबेस, उसके पति कादमस" के साथ क्या किया जाए? उसके साथ मैं सन्धि कैसे करूं?"

'सेबेस ने कहा, मेरे मतानुसार आप उसको सन्तुष्ट करने का कोई न-कोई मार्ग ढूंढ ही निकालेंगे। मुझे विश्वास है कि आपने इस तर्क को हार-मोनिआ के साथ कुछ इस ढंग से जोड़ा है, जिसकी कि मैं कभी आशा ही नहीं कर सकता, क्योंकि जब सिम्मिअस अपने बखेड़े को बता रहा था, तो मैंने बिलकुल यही कल्पना की कि उसका उत्तर नहीं दिया जा सकता। इसलिए मैं यह देखकर चकित हुआ कि उसका तर्क आपके प्रथम वार को भी रोक न सका और यह असम्भव नहीं यदि दूसरा भी, जिसको आपने कादमस का नाम दिया है, वैसी ही गति प्राप्त करे।"

'नहीं, मेरे अच्छे मित्र, हम गर्व नहीं करना चाहिए सुकरात ने कहा